ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला
सम्पादक और नियामक : श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन

प्रथम संस्करण १९६१
मूल्य दो रुपये



प्रकाशक
मन्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी.

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल,
सन्मति मुद्रणालय, वाराणसी.

प्रियजनोंको

जिन्हें शिकायत है कि मैं अधिक क्यों नहीं लिखता।

किञ्चित्

नये रंग : नये ढंग ऐसी कृति है जिसे भूमिकाकी अपेक्षा नही ।

जमानेकी रंगीनियोने किसको नही रँगा, और कौन है जो देर-सबेर इसके नये ढंगोसे परिचित नही हो जाता ?

हाँ, कुछ व्यक्ति है जो मोहते है, कुछ प्रश्न है जो मथते है, कुछ समस्याएँ है जो समाधान माँगती है, और कुछ पहलू है जिनपर प्रकाश डालने और पानेका मन होता है ।

पुस्तकके मुख्यत: दो खण्ड है । 'जो वे स्वय न कह पाये' शीर्पक-मालाके अन्तर्गत राजेन्द्रबाबू, नेहरूजी, मौलाना आजाद, राजाजी, कृष्ण मेनन, जयप्रकाश नारायण, विजयलक्ष्मी पण्डित, विनोबा भावे, नम्बूद्रिपद आदि ऐसे ग्यारह व्यक्तियोके रेखा-चित्र है जिन्होंने भारतकी तात्कालिक राजनीति और लोक-जीवनको प्रभावित या आकर्षित किया है । व्यक्तित्वोकी स्पष्ट, अनावृत रेखाओमे अन्तर्मनकी आकुल और अनिर्वचनीय छवियोंको आँकनेका यह प्रयत्न एक प्रकारका दु:साहस ही है । जिन अनेकानेक पाठकोने इन रचनाओको सराहा है उनके प्रति कृतज्ञ हूँ ।

देश-विदेशमे, युगके रंगमंचपर आजका मानव नाना भूमिकाओमे जो नाटक खेल रहा है, तथा यवनिकाके पीछे देह और मनके जो प्रच्छन्न द्वन्द्व और संस्कृतियोके जो उजागर संघर्ष चल रहे हैं उनकी झाँकी इन रचनाओमे प्रस्तुत करनेका प्रयत्न मैने किया है । यों आप चाहे तो इन्हे ख्रुश्चेव, कैनेडी, चैसमैन, गागारिन, हेमिग्वे और अन्तरिक्ष युगके उडाकोके दिलचस्प किस्से समझकर पढ ले !

बहरहाल, बात यह ठीक है कि '**नये रंग : नये ढंग**' ऐसी कृति नही जिसे भूमिकाकी अपेक्षा हो ।

दीपावलि, १९६१ }

—लक्ष्मीचन्द्र जैन

अनुक्रम

जो वे स्वयं न कह पाये !

नये रंग : नये ढंग

जो वे स्वयं न कह पाये !

- राजेन्द्र बाबू
- नेहरूजी
- मौलाना आज़ाद
- राजाजी
- कृष्ण मेनन
- जयप्रकाश नारायण
- ढेबर भाई
- मोरारजी देसाई
- शंकरन् नम्बूद्रिपद
- विजयलक्ष्मी पण्डित
- विनोबा भावे

राजेन्द्र बाबू

एक वर्ष और पूरा हो गया जो दूसरा शुरू हुआ है वह भी एक दिन इसी तरह पूरा हो जायेगा। और फिर तीसरा, फिर चौथा …!

पुराणोमे कहा है कि स्वर्गमे देवताओकी अवधि ज्यो-ज्यो चुकनेको आती है, गलेकी माला मुरझाने लगती है। एक-एक फूल कुम्हलाता है और हृदय मुरझाता जाता है। एक दिन सब राज-पाट, वैभव, यशोगान समाप्त हो जाता है। पर, फिर उनकी आयु भी तो समाप्त हो जाती हैं। जनतन्त्रवादका यह कैसा अभिशाप है कि केवल राजपाट, वैभव और यशोगान ही समाप्त होता है, व्यक्ति समाप्त नही होता ?

जब राजाओका एकछत्र राज्य होता था, तो वे अपने पुत्रको राज्य-

सिहासनपर बिठाकर स्वयं संन्यास ले लेते थे। उनका मान और यशोगान बढता ही था। कैसी अच्छी प्रथा थी! तानाशाहीमे भी व्यक्तिका एक बचाव तो है। जब तक गद्दीपर रहे, शानसे रहे, दवदवेसे रहे, जिस रोज किसी दूसरेका पल्ला भारी हुआ तो नीचेसे गद्दी खिसकी और ऊपरसे सिर।

किन्तु यह सब कैसे मनहूस-से विचार है? सोचनेकी वात तो यह है कि अवकाश प्राप्त होनेपर जीवन कैसे बिताया जाये? राष्ट्रकी परम्परा क्या हो?

कौन नही जानता कि हमारे ही देशमे राजर्षि भी हुआ करते थे? बाहरसे कुछ भी दीखे, अन्दरसे मन कभी इस राजसी ठाठमे भीगा नही। वह घटना बराबर कचोटती रही जब बापूने एक दिन साबरमती आश्रममे, भर-दुपहरी पसीनेसे तर देखकर भी कह दिया था, "इक्केमे एक रुपया क्यो खर्च किया? जब देशका शासन चलाओगे तो क्या इसी तरह अपव्यय करोगे?"

घटना चाहे न भी घटी हो, पर जानता हूँ लोक-मानसमे यह चित्र है; ऐसे प्रश्न है। इन्ही प्रश्नोके समाधानके लिए तो मनुष्यको ज्ञान मिला है, विवेक मिला है। भरतकी बात सोचता हूँ तो गद्गद हो जाता हूँ। कैसे निर्लिप्त थे वे! जैसे जलमे कमल! बडे भाग्यवान है वे कमल जो कीचड़से ऊपर उठे रहते है!

जनवरी, १९५८

नेहरूजी

सवाल बहुत बडे है जिन्हे हमे हल करना है। तमाशा यह है कि जितना ज्यादा हल निकलता है, सवाल उतने ही फैलते जाते है।

हमने बाहरकी बहुत बातें कीं; दुनिया भरकी मुसीबतोकी पंचायत हम करने चले; हम बढे, काफी दूर तक बढे; लोगोने हमारी बातका वजन माना। पर फिर यह क्या हुआ कि हमे एक बहुत बड़ा झटका लगा और हम लड़खडाकर गिरने-गिरनेको हो गये ?

अपनेसे तो पर्दा नही। मानना चाहिए कि हमने मिस्रके बारेमे एक तरहकी ज्यादती की और हंगरीके बारेमे दूसरी तरह की। अंग्रेज और फ्रान्सीसी बुरे हो सकते है पर इतने नही; रूसी अच्छे हो सकते है, पर इतने

नही। नासर बहुत हिम्मतवाला इन्सान है, दुनियापर उसे नाज भी हो सकता है, पर वह दुनियामे हमारा इतना बडा और एकमात्र दोस्त नही कि उसकी तरफ तनी हुई बन्दूके हम अपने सीनेपर झेलने जाते और शेखी बघारते फिरते ?

बहरहाल आपने देखा होगा कि अब मेरे बयान दूसरोके बारेमे इतनी रफ्तारसे नही निकलते। अब जो कहता हूँ बहुत नपा-तुला। फिर भी कभी-कभी झोकमे कुछ अल्फाज निकल जाते है। मतलब यह कि अगर आसमान टूटकर हमारे सिरपर गिरने लगे और मौत सामने खडी हो, और पूरबके राष्ट्र और पश्चिमके राष्ट्र हाथ बढाये कि आओ हममे शामिल हो जाओ, हम तुम्हे बचायेगे, तब भी हम दोनोमेसे किसीके दलमे शामिल न होगे। यानी ? लोग अगर हिम्मत करे और मुझसे पूछे कि 'यानी' ? यानी हम मरना पसन्द करेगे ? बहरहाल सवाल पूछा नही गया तो अब मै जवाब देनेकी जहमत क्यो मोल लूँ ?

रातके डेढ-दो बजे तक काम करनेके बाद जब बिस्तरमे लेटता हूँ, लैम्प गुल करता हूँ–तो अक्सर बापू याद आते है। और महसूस होता है कि मै कितना अकेला पड गया हूँ। राष्ट्र हमारा ऊँचे उठा पर व्यक्तिगत तौर-पर हममेसे हर कोई नीचे गया। मै राज चला सकता हूँ पर इन्सान नही बना सकता। इन्सान बना सकते थे बापू, और वह आज है नही।

ठीक है, विनोबाजी है। पर उनके आगे भी यारोने राजनीतिकी चौपड ला बिछायी। बापू क्या मोहरे चलते थे ? खैर, छोडो इन किस्सेको। सच बताऊँ ? जी चाहता है राजनीति छोडकर किताबोका बण्डल और कागज-कलम लेकर कही एकान्तमे जा बैठूँ। पर, अब इस राजनीतिके चक्रसे निकलना असम्भव नही तो बेहद मुश्किल तो हुई है।

लोग पूछते है, मेरे बाद कौन और क्या ? मैने उन्हे जवाब तो दे दिया, पर जानता हूँ यह सवाल गलत नही है। सवाल माकूल है, बडा है। प्रजातन्त्रमे कोई इतना बडा क्यो हो जाये कि दूसरा कोई भी उसके कन्धे

तक भी न पहुँच पाये ? आजसे दस साल पहले ही मुझे इस पहलूपर ध्यान देना था। फिर भी, यह गनीमत है कि प्रजातन्त्र वक्त पड़नेपर अपना नेता पैदा कर लेता है।

हाँ, असली चिन्ताकी बात तो यह है कि प्रजातन्त्रकी मजबूती जिस राष्ट्रीय चरित्र—नैशनल कैरेक्टर—पर टिकी होती है वह कैरेक्टर हम लोगोमे नही आ रहा है। इसकी जिम्मेदारी किसपर ? यह सवाल मेरी आत्मामे तीरकी तरह चुभा हुआ है। गान्धीका उत्तराधिकार ओढकर और प्रधान मन्त्रीके पदपर बैठकर इस सवालका जवाब मै नही दूँगा तो और कौन देगा ?

जनवरी, १९५८

मौलाना आज़ाद

कैबिनेटमे मेरा दर्जा प्राइम मिनिस्टरके बाद ही है। बहुत बडी बात है, और यूँ कुछ भी नही।

पिछले एलेक्शनमे 'राष्ट्रपती'के चुनावके बारेमे एक तूफान बरपा हुआ—लोगोने शोर मचाया कि इस बार दक्कनी हिन्दुस्तानका नुमाइन्दा ही प्रेजीडेण्ट बने। मैने सोचा था यह हिमाकत है कि इस सवालको इस रौशनीने देखा जा रहा है। अपना वतन सारा एक इसमे उत्तर-दक्खन क्या ? चुनाव हो जानेके बाद अब मै समझ रहा हूँ कि सवालपर रौशनी गलत रूपसे नही डाली जा रही थी। लोगोने क्यो नही सोचा कि उत्तर

भी तो आखिर इतना बड़ा है—उसे महदूद और मख़सूस करनेका मतलब ? कितनी उम्मीद थी मुझे !

अब जनाब, यह तालीमका महकमा भी अजीब भूल-भुलैयाँ है। प्राइमरी एज्यूकेशन, सेकेण्डरी एज्यूकेशन, बेसिक एज्यूकेशन, टेक्निकल एज्यूकेशन, ह्यूमैनिटीज—तरह-तरहके गोरखधन्धे है। कोई स्कीम ही परवान नही चढ़ती।

कबीरको मैने कहा था कि डाक्टर ताराचन्दसे मशविरा करके, पण्डित सुन्दरलाल और चतुरवेदी साहबके दस्तखत लेकर जो करना है कर डाल। हमे बहसमे नही पड़ना है, मुल्की तालीमको सही नजरियेसे देखना है। मगर जोश तो इन लोगोमे है ही नही। उधर जम्हूरियतका करिश्मा यह कि अब कहाँ पहुँचे कबीर, कहाँ डाक्टर ताराचन्द ! इधर पण्डित पन्त भी कैबिनेटमे तशरीफ लाये है। क्या कहूँ ? 'अक्लमन्दाराँ इशारा काफीस्त।'

हिन्दीवालोकी बातें मै करूँगा नही। 'महा' जी वाली बातको इन लोगोने कैसा तूल दिया है ? अच्छा है अब राजगोपालाचारीसे वास्ता पडा इन लोगोका। हिन्दुस्तानीकी बातपर ये लोग टिके होते तो मुल्कमे तफरका न पडता क्योकि बोलनेकी जबान सबकी हिन्दुस्तानी हुई होती, लिखनेके लिए, भई, हिन्दी 'साहितिया' मे लिखो, चाहे उर्दू अदबमे और चाहे ऐसे लिखो जैसे क्रिशन चन्दर या हुमायून कबिर !

और भी तरह-तरहके झगड़े है। सियासतका काम भी कितना बड़ा काम है जिसके लिए सारी कैबिनेटमे वाहिद मै हूँ। पजाबका मसला खैर अब पन्त साहब देखने लगे है, मगर पाकिस्तानका मसला, मिडिल ईस्टका मसला, अरब मुल्कोंकी दोस्तीका मसला, हिन्द-चीनका मसला, यहाँतक कि हिन्दुस्तानमे बसनेवाले खालिस मुसलमानो और पाकिस्तानी मुसलमानोंका मसला—सब मसले महज मेरी ही सलाहपर हल होते है।

लोग चीमेगोइयाँ करते है कि मै पार्लमेण्टमे दिखाई नही देता। ताज्जुब तो यह है कि जिन लोगोको मै दिखायी नही देता उन्हे मेरा हाथ

दिखायी देता है—दुनियाभरकी खुराफातमे ! हमवतनो ! कभी याद करोगे कि कोई शख्स हुआ था इस सरजमीनपर पैदा—गांधीका हमसफर, जवाहरका हमराया—जिसने शख्सियतकी बुलन्दीको नीचा नहीं होने दिया, जो असली तहजीब और तमद्दुनका हामी था, और जो जिन्दगीकी हर शयका लुत्फ लेना जानता था चाहे वह चीनी चाय हो, चाहे सीलोनी सिगार या फिर खैयामकी रुबाई* !

जनवरी, १९५८

---

* मौलाना आजादके स्वर्गवाससे एक महीने पहले यह लेख 'ज्ञानोदय' में प्रकाशित हुआ था। आज यह उनकी श्रद्धाञ्जलिके रूपमे प्रस्तुत है।

राजाजी

मैं जानता हूँ लोग कहते हैं : 'देशमें अगर तेज दिमागका कोई आदमी है तो राजाजी ।' लोग यह भी कहते हैं कि मेरी बुद्धिमें ऐसी धार है जैसी तेज छूरीमें । इस धारने जब-जब गाँधीजीके तर्कोंपर वार किया या जिन्नाकी कसी गाँठोंको काटा या कांग्रेस वर्किंग कमेटीके दिमागी झाड़-झंकाडोंको साफ किया, लोगोंने मन ही मन प्रशंसा की, मगर साथियोंने सदा बुरा-भला ही कहा ।

प्लेग आनेवाला होता है तो चूहे मरने शुरू हो जाते हैं । नादान कहता है चूहोंने प्लेग फैलाया—चूहोंको मारो; बुद्धिमान् कहता है प्लेगने चूहोंको मारा, प्लेगको मारो । मैंने जब कहा था पाकिस्तान बनकर रहेगा,

रहूलियतसे बना लो, तब करोडो 'बुद्धिमानो' मे मैं अकेला नादान माना गया था। आज नक्शा दूसरा है।

पर बुद्धिकी धार कभी-कभी उल्टी काट भी कर जाती है। जब मैंने हिन्दीके समर्थनमे विरोधियोके काले झण्डे और सडे अण्डे सहे, तब धार सीधी थी या आज जब कि मै स्वयं हिन्दीके विरोधमे काला झण्डा लिये खडा हूँ। लोग हैरान हैं। मै बताता हूँ—

डिक्शनरीमे दो शब्द है : एक 'राजनीति' दूसरा 'कूटनीति'। जब मै किसी ऊँचे पदपर होता हूँ तो 'कूटनीति'से काम लेता हूँ और जब साधारण पदपर या बिना पदके होता हूँ तो 'राजनीति'से काम चलाता हूँ। हिन्दीका समर्थन 'कूटनीति' थी, हिन्दीका विरोध आजकी साधारण 'राजनीति'!

'पद'की बात चल पडी तो यह भी लगे हाथ स्पष्ट कर दूँ कि मै सगीतके स्वरोकी तरह आरोहपर पहुँचकर अवरोहपर आना पसन्द करता हूँ।—गवर्नर जनरल, मुख्य मन्त्री, मन्त्री यहाँतक तो आ पहुँचा था। अब ? अभी कल ही एक पुराने मित्रकी चिट्ठी आयी कि मै अब तहसीलदार बन जाऊँ, ऊजगम इलाकेका ! मुझे तो आपत्ति नही, मै आज भी अखाड़ेमे उतर सकता हूँ, पर उत्तरी भारतके ये कागजी पहलवान इतनी 'रिस्क' ले सकेंगे ?

एक दूसरे मित्रका अभी-अभी पत्र आया है। लिखा है, 'तुम गवर्नर-जनरल रह चुके, बडेसे बडा मान पा चुके, अब बुढापेमे यह सब खेल-बखेड़ा बन्द करो। शास्त्र पढो और योगीकी तरह परम-आनन्दमे मग्न रहो। मैने भी लौटती डाकसे जवाब लिख दिया है. 'परामर्श नया नही। फिर भी धन्यवाद। जैसा आपने सुझाया, वैसा ही कर रहा हूँ। अंग्रेजीमे रामायण लिख चुका, उपनिषद् लिख चुका, महाभारत अभी पूरा कर चुका हूँ; अब गीतापर हाथ लगाया है। अभिप्राय यह कि शास्त्र भी पढता हूँ और योगीकी तरह मौज भी करता हूँ—गीताके कर्मयोगीकी तरह।'

मुझे अपने किसी विचारमे शंका नही, किसी व्यवहारमे भय नही। कुछ लोग शायद इसी बातसे चिढ़ते हैं—चिढा करें :

उत्पत्स्यते हि मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी।

फ़रवरी, १९५८

कृष्णा मेनन

कहाँ मेरा केरल, कहाँ जवाहरलालका उत्तर प्रदेश ! इसे सितारोका खेल ही कहिए कि हम दोनो ऐसी आत्मीयतामे बँधे कि कोशिश करनेवाले हारे जा रहे है पर बन्धन नही टूटता ।

मै पूछता हूँ मुझे विदेश मन्त्रालयसे हटवाकर 'डिफेन्स'मे डाला, इसमे किसीको क्या मिला ? और मेरा ही क्या नुकसान हुआ ? सारी उम्र 'ऐटैक' और आक्रमणमे बीती, अब 'डिफेन्स' और प्रतिरक्षाके करतब मुझसे देखना चाहते है देखे ! जितने ही ज्यादा हवाई हमले होगे मै बचावमे उतने ही ज्यादा हवाई किले खडे करता जाऊँगा ।

यह कुछ उलट-फेर समझमे नही आया कि राष्ट्रसघमे मै गया था पाकि-

स्तानपर इल्जाम लगाने, पर अब अपनी ही सफाई देना मुश्किल हो रहा है। जैसे कि अपराधी हम ही हो ! बताइए, मैने भाषण देनेमे कोई कोर-कसर रखी ? सिक्यूरिटी काउन्सिलमे साथ जानेवाला डाक्टर गवाह है, जिस हालतमे जितनी देर तक जिस जोशमे मै बोला, वह किसी औरके बसकी बात थी ?

और सवाल यह नही है कि मै क्या बोला—उसे सुनने-समझनेको तो कोई वहाँ तैयार था ही नही; जरूरत भी नही थी क्योकि दस सालमे बीस बार दो सौ दलीलें दोनो तरफकी सब सुन चुके थे। जरूरत थी एक 'ड्रैमेटिक इफेक्ट'—नाटकीय प्रभाव—की, जो मैने पैदा किया। हैरानी यह है कि दस सालकी बहसके बाद जो अचूक वाक्य मेरे हाथ लगा वह पहली ही बहसमे क्यो न सूझा—Let Pakistan vacate the agression—पाकिस्तान हमलेकी स्थितिको हटाये। एक तोता भी जाकर अगर हर साल इतना भर रट आता तो हिन्दुस्तानका पक्ष समर्थित हो गया होता।

इस एक सालमे हमारी अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिको जो एक-दो धक्के लगे, उसकी जिम्मेदारी डालनेको दुनिया जवाहरलालपर डालदे, लेकिन असली जवाबदारी तो मेरी है। मै अपनी कमजोरी जानता हूँ। साम्राज्य-वादी अंग्रेजोने भारतके साथ जो व्यवहार किया है और अपनी जवानीके दिनोमे गुलाम भारतीय होनेके नाते जो अपमान मैने विदेशोमे बीसियो बरस सहा है उसके घाव कोई आज भी मेरे सीनेमे देखे।

साम्राज्य-लोलुप अंग्रेजो और थैलीके पुजारी अमेरिकनोके बारेमे मेरे विचार पलट ही न पाये अगर्चे दिल्लीकी सडकोपर पण्डित माउण्टबैटन-की जय बुल गयी और आइजनहावरके नाटो काउन्सिलमे दिये गये ताजे भाषणमे नेहरूको महात्मा बुद्धके शब्दोकी गूँज सुनाई दे गयी। पश्चिमी देशोकी तिल-सी बुराई भी मुझे ताड नजर आती है और रूसकी ज्याद-तियोका पहाड़ भी राई-सा दिखाई देता है। यही कारण है कि हंगरी-

के मामलेमे मेरी रिपोर्ट गलत साबित हो गयी और उसके आधारपर नेहरूने जो कहा उसने हमारे देशको तटस्थता-नीतिको कलंकित किया।

जी चाहता है जवाहरपर जान निछावर कर दूँ। उसे मेरी ईमानदारीसे भरोसा है, अब अक्लमे चाहे न रहा हो। सबसे बडी बात यह कि वह आदमी दोस्ती निभाना जानता है। लोक-सभामे शोर मचा कि मैने जीप गाडियोके विलायती ठेकेमे लाखो रुपये चौपट कर दिये; औडीटरोने हल्ला मचाया कि मैने विलायतमे ठाट-बाटके मकानोपर हजारो रुपये पानीकी तरह बहा दिये। पर जवाहरपर इसका कोई असर नही हुआ क्योकि वह जानता है कि कृष्ण मेनन बीसवी सदीका साधु है जिसे पहननेको दो सूट, पीनेको बीस सिग्रेट, खानेको पचास प्याले चाय, सोनेको नवदार सिंगिल बेड और घूमनेको महज़ एक छडी चाहिए।

देशमे और विदेशमे यह बात बडे दावेके साथ खुदाके फतवेकी तरह दिन-रात दोहरायी जा रही है : 'कृष्ण मेनन इज द मोस्ट हेटेड मैन इन अमेरिका!' मै सुनता हूँ तो अपने भाग्यपर स्वयं ही ईर्ष्या करने लगता हूँ क्योकि मै उस दार्शनिककी बातमे विश्वास करता हूँ जिसने कहा था, "किसी आदमीके बडप्पनकी नाप इस बातसे होती है कि कितने धनीमानी लोग कितने जोरसे उसकी दुश्मनीका दम भरते है और अपने अहंको सन्तुष्ट करते है।"

मुझे गुस्सा जल्दी नही आता, लेकिन जब आता है तो विरोधीका इस जोरसे अपमान करता हूँ कि फिर माफी ही माँगनी पडती है, मुझे!

जनवरी, १९५८

जयप्रकाश नारायण

मै हैरान हूँ कि यह सवाल उठाया ही क्यो जाता है कि नेहरूके वाद कौन ? राजनीति कितनी ही गन्दी सही उसमे भी तो एक 'मिनिमम मौरैलिटी', (न्यूनतम नैतिकता) चाहिए ! क्या सचमुच इन लोगोको पता नही कि आजसे २० साल पहले इस सवालका जवाव जनताकी भावनाएँ दे चुकी है कि नेहरूके वाद कौन ?

राजनीतिकी ऐसी ही करतूतोको देखकर मैने घोषणा कर दी है कि मेरा राजनीतिसे कोई वास्ता नही। यह वात दूसरी है कि राजनीति मुझसे नाता नही तोडना चाहती। विनोवा राजनैतिक व्यक्ति नही, शुद्ध धार्मिक या सामाजिक व्यक्ति है। इसी तरह मेरे वक्तव्य भी राजनैतिक

नही है, या तो उन्हे प्रवचन माना जाय या साहित्यिक अभिलेख। क्योकि राजनीतिसे मेरा वास्ता नही।

और ये सब क्या प्रजातन्त्र, जनतन्त्र, जनताका राज आदिकी रट लगा रखी है? मैने इस वर्ष जिस नये सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है, उसने भारतवर्षमे सदा-सदाके लिए इस प्रकारके प्रजातन्त्रको समाप्त कर दिया। अब बच्चू लडो इलेक्शन, बनाओ कैबिनेट, रचाओ राज!

गुलामीमे जन्मा, अमेरिकन सिस्टममे पढा-पला, गाधीवादमे दीक्षा ली, क्रान्तिकारियोका सगठन किया, समाजवादकी स्थापना की, और क्या बताऊँ, कहते हुए सकोच होता है—अपने जातीय नेताके निधनपर उनके स्मारकके लिए चन्दा तक किया, पर मेरे स्वप्न कही भी पूरे नही हुए। मै बढता गया, और मेरा हर आन्दोलन पिछड़ता गया। नतीजा यह हुआ कि मै अब लीडर ही लीडर रह गया, 'फौलोअर' कही रहे ही नही।

सोचता हूँ, जब जीवनमे सत्य कही है ही नही और सब स्वप्न ही स्वप्न है, तो मै स्वप्नो हीको क्यो न सँजोऊँ? इसीलिए मैने विनोबा बाबाका पल्ला पकडा है क्योकि विनोबासे बडा स्वप्न भी आज धरतीके अँचलमे कही है नही! जानता हूँ, एक दिन आयेगा जब मै विनोबाके स्वप्नोको छोडकर भी आगे बढ जाऊँगा। क्योकि बढना मेरा काम है, पिछडना दूसरोका भाग्य!

जनवरी, १९५८

ढेबर भाई

किशोर वयसमे ही गान्धी बाबाका जादू दिल और दिमागपर असर कर गया था। कैसे नशीले थे वे दिन! आदर्शोकी चोटियाँ मुट्ठीमे कस-मसानेको थी, यौवनकी कर्मठता ववण्डरकी तरह घुमाव दे रही थी, स्वप्नो-की सुनहरी डोरमे अन्तरिक्षके चाँद और तारे पतगकी तरह फरफरा रहे थे। तभी दिखायी दे गया था कि संसारका सबसे बड़ा राज्यसिहासन, ससारका सबसे बड़ा ताज, काग्रेसके प्रसीडेण्टकी गद्दी है।

फिर एक दिन अखबारोमे पढा, लाहौरकी अनारकलीमे काग्रेसके प्रेसी-डेण्टका जलूस निकला तो लोगोके रोम-रोम पुलक-पुलक मानो इन्द्रके हजार नेत्र बन गये। जवाहरलाल नेहरू प्रेसीडेण्ट थे, सजीले घोडेपर शानसे

बैठे हुए थे। उस शानसे बैठना आज तक भी किसी दूसरेको नसीब नहीं हुआ। अनगिन हारो और मालाओकी वर्षामें, फूलोंका वह गुच्छा भी उनपर आ गिरा जिसकी एक-एक पखडीमे सौ-सौ नन्दन कानन विहँस रहे थे, जिसकी सुवासके एक-एक झोकेमे प्यार और आशीषकी हजार-हजार बहारे मचल-मचल रही थी—वह गुच्छा मोतीलाल नेहरूने फेका था !

जवाहर भाई, बताओ तो तुम्हे उस समय कैसा लगा था ? तुम्हारी बात तुम जानो, वह गुच्छा मुझ दूर बैठे हुएके कलेजेपर आ लगा। वह गन्ध मेरे प्राणोमे हमेशा-हमेशाके लिए बस गयी ! स्वप्नोकी सुनहरी डोरमे आसमानके चाँद-तारे उलझी पतंगकी तरह फिर एक बार फरफरा गये। क्या कभी मै भी कांग्रेसका प्रेसीडेण्ट बनूँगा ? धीरे-धीरे यौवनके स्वप्न प्रौढताकी सजीदगीमे सो गये। वकालत शुरू की और छोड़ दी। नशा कायम रहा। आदर्शोंकी उपासनामे अपनेको खपा दिया। कर्त्तव्यकी समिधामे सब कुछ होम दिया।

जीवन चलता गया, क्रान्तियाँ फलती-फूलती गयी, राष्ट्र निर्बन्ध हुआ, कांग्रेसका मुख्य ध्येय पूरा हुआ, और जब स्वयं बापू अपना अन्तिम निर्णय देकर चले गये कि कांग्रेसकी राजनैतिक परिसमाप्तिमे ही संस्थाका कल्याण है तब भला मै पुराने थोथे स्वप्नसे क्यो चिपटा रहता ? नये युगके नये स्वप्न थे। भाग्यने साथ दिया और मै सौराष्ट्रका मुख्य मन्त्री बन गया। बहुत बडा महत्त्वाकांक्षी तो मै कभी न था। मेरे लिए यही काफी था। उसी लाइनमे चलता जाता तो बृहत् बम्बई राज्यका भी मुख्य मन्त्री बन सकता था चाहकी सीमा भी यही थी।

लेकिन भाग्यका व्यंग्य सामने आया और यौवनका वह स्वप्न अब फला जब स्वप्नका आकर्षण समाप्त हो गया। सुनहरी डोर कट गयी, चाँद-तारे आसमानमे टँगे रह गये और फटे कागजकी पतंग मेरे हाथमे आ फँसी। भला कोई पूछे, सारे हिन्दुस्तानमे मै ही एक भोलानाथ इन्हे ऐसा

मिला जो गरल पान करे ? विधाताके लिखेको और नेहरूकी वाणीको कौन टाल सकता है ?

अब सिरपर यह ताज है जिसमे कांटे ही कांटे है और गलेमे यह क्रूस है जो मरते दमतक अगर पड़ा भी रहा तो बादमे यादगारके रूपमे कभी न खड़ा रह पायेगा । ओ मेरे साबरमतीके मसीहा, तेरी हजारो गरीब भेड़े बिखर गयी, अजाने रेगिस्तानोमे खो गयी । मै क्या करूँ, उनका भाग्य ! इधर देखते-देखते कुछ भेडे भेड़िये बन गयी । मेरी लाचारी तो देख कि अब सब चारागाहे उनकी है, शहीदोकी दरगाहे मेरी !

यही तख्त था जिसपर बैठनेवाला राष्ट्रपति कहलाता था, यही अब तख्ता है जिसपर महज अध्यक्ष बैठता है । रह-रहकर खीझ उठती है कि यह किस जंजालमे फँस गया मै ! मुझे देखकर स्वर्गीय मौलाना आजाद एक शेर गुनगुनाया करते थे :

मछली ने ढील पायी है,
लुक्मे पै शाद है
सय्याद मुतमइन है
कि कांटा निगल गयी ।

हे भगवान, कब सोचा था कि राजनीतिमे इतनी गहरी कालस है, इतना आत्मघाती कर्दम है ! यह पजाब है, यह आन्ध्र है, यह उडीसा है, यह मैसूर है, यह बिहार है, यह बंगाल है, यह राजस्थान है, यह बम्बई है—इस प्रत्येक नामके साथ-साथ जो काले और धुँधले चित्र सामने आते है उन्हे कोई मेरी आँखो देखे ! नेहरू भाई, तुम भी नही देखते जो मै देखता हूँ । कृपलानी मित्र, तुम भी नही जानते जो मै जानता हूँ । सच बात तो यह है कि यह आपका ढेवर भी वह नही देखता, वह नही जानता, जो अन्तर्यामी देखता-जानता है !

कहाँ जा रहा है मेरा यह प्यारा देश जिसकी मूर्तिको 'वन्दे मातरम्' के मन्त्रसे मेरी पीढीने अभिषिक्त किया ! कहाँ जा रहे है मेरे ये साथी-

संगी जिन्हे मिट्टीके पुतलोकी हैसियतसे उबारकर बापूके जादूने वीर, त्यागी और तपस्वी बना दिया था! नेहरू भाई, तुम तो राजनीति और काग्रेससे मुक्ति ले सकते हो, क्योंकि तुम आज इन दोनोसे बडे हो, इन दोनोसे ऊँचे हो। मै क्या कहकर यह जुआ अपने कन्धेसे उतारूँ? सफलता प्राप्त करनेमे जो गौरव है उसे दुनिया देखती है, जानती है, लेकिन लगातार असफलताएँ झेलनेके लिए जो हौसला चाहिए उसे कौन सराहेगा? देख रहा हूँ कि शिराजा बिखर रहा है, अवयव टूट रहे है, कडियाँ कडक रही है, चोखटे चर्रा रहे है, पर उपदेश मुझे देने ही होगे, दौरे मुझे करने ही होगे, मनको मुझे समझाना ही होगा कि :

कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन!

मई, १९५८

मोरारजी देसाई

अमेरिकन जर्नलिस्ट भी अपने हुनरके एक ही उस्ताद है। अभी उस रोज उन्होने मेरे व्यक्तित्वको एक प्रतीकमे फिट कर दिया, एक रूपकमे ढाल दिया। लिखा : मोरारजी देसाई, मानो "इस्पातकी डण्ठलमे गुलावका फूल।"

पढ़कर मै वाग-वाग हो गया ! मै क्या स्वयं इतनी सच्ची वात इतनी अच्छी तरह कह सकता था ? कहता भी क्यों ? मै साहित्यिक नही हूँ, कवि तो हूँ ही नही। पर इस रूपकका आध्यात्मिक अर्थ मुझे वहुत अच्छा लगा : तन संयममे इतना कठोर अजेय जैसे स्टील, मन आदर्शोकी वगियामे इतना उत्फुल्ल जैसे फूल।

मै इस रूपकपर मुग्ध था कि एक दिन एक कवि मित्र आये, बोले : "ये अमेरिकन बडे शरारती है ! देखा, आपको कैसे प्रतीकमे कसा है ? मखमली दस्तानेमे लोहेका पंजा लिये फिरते है ये लोग । आपको गुलाबका फूल कह दिया ।" मुझे कवि मित्रकी यह बात अखरी, साफ कहना पडा, "अब कविता छोड आप घास बेचिए । आजके हिन्दुस्तानके कवि उदात्त और आध्यात्मिक भावोको न अपनी कवितामे व्यक्त करते है न दूसरोकी अभिव्यक्तिको समझ सकते है ।"

मैने उन कवि मित्रको खूब खरी-खरी सुनायी । आप जानते है मै कहने पै आता हूँ तो लिहाज नही बरतता । मेरे अन्दरका नीति-निष्ठ कठोर गुरु सदा बेत लिये तैयार बैठा रहता है । मित्र चुपचाप सब लताड़ सहते रहे । उठने लगे तो बोले : "गुलाबके फूलकी उपमा सचमुच सुन्दर है । गुलाब स्वयं अपनेपर मुग्ध रहता है, पर दूसरोको उसके काँटोसे बचाव करना मुश्किल पड जाता है ।" वे चले गये, और मै सोचता रह गया !

यह बात नही कि मै अपनी कमजोरियाँ नही जानता । पर, मै यह भी अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरी साधारण कमजोरियोकी अपेक्षा मेरे असाधारण गुण मात्रामे और परिणाममे कही अधिक है । कमजोरियाँ 'साधारण' इस अर्थमे कि वे 'नैतिक' कमजोरियाँ नही है । तो क्या वे 'अनैतिक' कमजोरियाँ है ? कह नही सकता । यह तो, खैर, भाषाका पेच आ पडा । सौभाग्यसे शक्तिका रहस्य युवावस्थामे ही मेरे हाथ लग गया : संयम, आवश्यकताओको न्यूनतम बना देना, अनुशासनकी जकड़, ध्येयके प्रति वफ़ादारी ।

अब भूख-प्यास मेरे वशमे है—थोडा दूध, जरा-सा शहद, कुछ फल, स्वल्प अन्न । आज वर्षोसे मेरा यही नियमित भोजन है । विदेशी दवा लेता नही, वश चले तो किसीको लेने न दूँ । सैर-सपाटेका शौक नही, विदेश

कभी गया नही,* विदेशियोंको पास आनेसे रोका नही। फिल्मी दुनियाका सरपरस्त हूँ। पर पिछले २० वर्षोंसे अखण्ड ब्रह्मचारी हूँ। पत्नी अत्यन्त सेवा-भावी और मितव्ययी, बच्चे ऐसे साधु कि पब्लिक बसमे खडे-खडे सफर करे तो माथेपर शिकन न आये!

राजनीतिके क्षेत्रमे काम करते-करते जीवनके कुछ नये तथ्य हाथ लगे है। मुख्य यह कि शासन स्वयं एक असंयम है। यही कारण है कि अत्यन्त संयमी शासक भी जनप्रिय नही होता। दूसरे यह कि व्यक्तिगत सयमकी कठोरता शासनको भी कठोर बना देती है, जब कि शासन होना चाहिए लचीला या फिर संयम-निरपेक्ष, अत्यन्त कठोर। भारतमे मद्य-निषेध संहिताका मनु मै ही हूँ। यदि प्रेस्टिज आडे न आये तो आज मै मद्य-निषेध नीतिपर एक 'पुनश्च' लिखूँ, क्योंकि केन्द्रमे आकर मैने देखा नेहरूजीका व्यक्तित्व इस सम्बन्धमे भी कितना लचीला है। और मौलाना साहब तो, खैर, शीराज़की शायरीसे सदा ही महकते रहते थे।

अर्थको मैने कभी भी शास्त्रका विषय नही माना। इसीलिए जिस वित्तको लेकर दिग्गज अर्थ-शास्त्री व्यर्थ हो गये उसे मै निरर्थ-शास्त्री अपने मन्त्रसे वशमे रखूँगा। लेकिन कितने दिन? कांग्रेसका तन्त्र कायम रहा तो मेरा लाभ बडे-से बड़ा है, और न रहा तो मेरा नुकसान कमसे-कम—विधाताने मुझे गढा ही कुछ इस प्रकार है।

मुझे 'धर्म' की आवश्यकता नही, 'अर्थ' की परवाह नही, 'काम' वशमे है, 'मोक्ष' की चिन्ता नही। चारो पुरुषार्थोंसे ऊपर उठकर केवल एक ही पुरुषार्थमे प्रवृत्त हूँ—पौलिटिक्स! बहुत ऊँचे पहुँच गया हूँ। एक डग और भरनेका अवसर मिले तो राजनीतिका एवरेस्ट मेरा है। भगवान करे कि वह अवसर न आने पाये क्योंकि उस कार्यके पीछे जिस कारणका योग होगा वह बड़ा दुःखद होगा। भगवान न करे कि वह अवसर यदि आना ही हो

---

* मई १९५८ तक यही स्थिति थी।

तो इतनी देरसे आये कि उखड़ती हुई महफिल उठ जाये, और गैरोंकी आती हुई बारात हिन्दुस्तानके जनवासेमें जम जाये ।

नीतिकारकी वाणी मनमें गूँजती रहती है :

प्राप्य चलान् अधिकारान् शत्रुषु मित्रेषु बन्धुवर्गेषु,
नापकृतं, नोपकृतं, न सत्कृतं, किं कृतं तेन ?

अस्थायी अधिकार पाकर जिसने शत्रुओंका अपकार नहीं किया, मित्रोंका उपकार नहीं किया और बन्धुओंका सत्कार नहीं किया, उसने भला फिर किया ही क्या ?

राजनीति कहती है : काश, तू ऐसा कर सकता ! गान्धी-नीति कहती है, काश, तू ऐसा न करे ! दोनों ही सच हैं । मिथ्या है केवल अहं, मिथ्या है सारा जगत् !

मई, १९५८

शंकरन् नम्बूद्रिपद

भारतका इतिहास एक नया मोड ले रहा है, युगका इतिहास भी। इतिहासके इसी सन्धिकालमे दक्षिणांचलके जिस छोटेसे प्रदेशपर आज सारे ससारकी आँखे लगी है वही है मेरा केरल। तमाल वृक्षोकी सघन पक्तियाँ, सुधा-भरे नारियलोकी लहलहाती गुच्छ-राशियाँ, लवग-फूली सुवासित लताएँ, मलय-बयार ! हाँ यही है मेरा केरल—"सुजला, सुफला, मलयज-शीतलाम्" वाणीकी साकार अभिव्यक्ति !

इतिहास बदल गये, इतिहासकी धारणाएँ बदल गयी, पर मेरे अन्त-रंगका इतिहासकार पुराणोकी उन कथाओको न छोड पाया। जो केरलकी गौरव-गाथाका गान करते है। कहते है स्वयं भगवान (?) परशुरामने

दक्षिणी सागरकी हिल्लोलोको चीरकर समुद्र-तलमेसे इस धरा-खण्डको बाहर निकाला था। कारण ? आर्य जातिके श्रेष्ठतम ब्राह्मणकुलको बसानेके लिए उन्हे अछूती धरतीकी जरूरत थी। ब्राह्मणोका वही श्रेष्ठतम कुल कहलाया नम्बूद्रिपद। अपने उन्ही पुरखोका वंशज हूँ मै शंकरन् नम्बूद्रिपद।

इतिहास बदलता है, पर इतिहास पुनरावृत्ति भी तो करता है—'हिस्ट्री रिपीट्स इटसेल्फ'। मेरी इस धराके आदिपुरुष परशुराम कितने बडे क्रान्तिकारी थे! उस क्रान्तिकी धुरी थी उनके फरसेकी धार जिसने क्षत्रियोको धरासे इस हद तक उखाड फेंका कि बेटीकी स्वयंवर सभामे जनक बिलख पडे—'वीर विहीन मही मैं जानी!' वह सब इतिहास अब बदल गया। उन नम्बूद्रिपदोका यह वशज अपनी परम्पराओंको तिलाजलि दे चुका। मैंने कुलक्रमागत अनेक विश्वासोको जडसे उखाड फेका, जीवनकी चर्या ही बदल दी।

मेरे बुजुर्ग समझाते रहे, चिल्लाते रहे, धिक्कारते रहे; पर मै टससे मस नही हुआ। क्योकि इतिहास बदलता है और बदलते हुए इतिहासको एक नायककी जरूरत होती है। इतिहास बदलता ही नही, पुनरावृत्ति भी करता है—इसी लिए तो परशुरामकी जगह है शकर नम्बूद्रिपद, फरसे-खाँडेकी जगह है हँसिया-हथौडा, क्रान्तिकारी ब्राह्मणोकी जगह है किसान-मजदूर और क्षत्रियोकी जगह है दुनियाभरके काले-गोरे वैश्य : सारी कैपिटेलिस्ट क्लास! आजका यह इतिहास ही कलका पुराण होगा।

जिन लोगोके दिमाग मुर्दा विचारोको ढोते-ढोते स्वयं शव बन गये वे बेचारे कहते ही रह गये कि साम्यवाद न भारतकी चीज है न भारतका जलवायु इसके अनुकूल। पर उनके देखते-देखते साम्यवादकी लता केरलकी धरतीपर लहलहा उठी, साम्यवादके बीज सब जगह बिखर गये, फुनगियाँ सब जगह फूट चली। यह कम बात नही कि संसारमे पहली बार साम्यवाद शान्तिके नगाडे बजाता, प्रजातन्त्रके नारे लगाता, विधानके शाही दरवाजे लाँघता हँसता-मुसकराता राजमहलोमे पहुँचा है।

जानता हूँ, इस महान क्रान्तिकी विजय-यात्रामे नम्बूद्रिपदके नामकी धुन आज कितने ही जोरसे तुरही और शहनाईपर गूँज रही हो, कल यह मात्र एक क्षीण प्रतिध्वनि रह जायेगी। दुर्भाग्य है कि साम्यवादका महा-यान आगे बढता ही तव है जव वह अपने अगुवा वाहकोंकी लाशसे सड़क पाट लेता है। ऐसा न हो और फिर भी साम्यवाद बढ़े, बढ़ता रहे, भारतीय साम्यवादी प्रतिभाके सामने आज यही सवसे बड़ी चुनौती है।

मैं तो उस दिनकी प्रतीक्षामे हूँ जव रूसवाले भारतीय साम्यवादियोंको साम्यवादके नये व्याख्याकारके रूपमे मान्यता देगे, उनका अनुगमन करेंगे। केरल इस नये साम्यवादकी प्रयोगभूमि है। सबसे अधिक अनुकूल समय भी हमे मिल रहा है। पण्डित नेहरू रिटायर हो रहे हैं। शक्ति-संचयके लिए ? नही, वह बेवस हो गये हैं। वह 'जौवरी' से, नौकरी माँगनेवालोसे तंग आ गये है, इन 'कम्बख्त' इलेक्शनबाजोंके स्वार्थी चक्करसे आहत हो गये हैं।

नेहरूजी कहते है, "मेरे सामने इससे कही बडे मसले है, बडे दाँव (स्टेक्स) है।" भला कोई पूछे, 'बडे दाँव'की भाषा उन्होने कहाँसे सीखी ? यदि वे यही भापा बोलते रहे, इसी तरह तंग आते रहे, और आत्म-निरी-क्षण करते रहे तो एक दिन उन्हे अपनी राजनैतिक पार्टीको नया नामकरण देना होगा। यही मौका है जब हम कांग्रेसको चुनौती देते हुए, नेहरूके नेतृत्वको स्वीकार करते हुए, उन्हे अपना अनुगामी बना सकते है।

भापा चमकदार भले ही लगे, काम वहुत आसान है। काश गोपालन, अजय घोष, डॉगे और ये हजारो साम्यवादी नौजवान समझ सकते कि नेहरूजीके 'स्टेक्स' उनके अपने 'स्टेक्स' है ! अभी कल ही दुनिया समझी हमने भारतके काग्रेसी प्रधान मन्त्रीका कम्युनिस्ट केरलमे शानदार स्वागत किया। मुझे तो उनके सीनेसे चिपटकर लगा कि मुझ भूतपूर्व कांग्रेसीने भविष्यके कम्यूनिस्ट प्रधान मन्त्रीको गले लगाया। अपने मन लगी बात भी क्या झूठ हो सकती है ? भविष्यके यथार्थ महल सदा ही वर्तमानकी

कल्पनाकी नीवपर खडे हुए है। मै नीव डालनेवालोमे हूँ, महल खडा करनेवाले आगे आ रहे है।

लोग कहते है तो शायद गलत नही कहते कि मेरे पुराने वुर्जुआ संस्कार मुझे लाखोकी भीडमे भी अलग पहचनवा देते है। उन्हे मेरे व्यक्तित्वमे ब्राह्मणत्वका तेज दिखायी देता है, मेरी सादी पोशाकमे यत्न-साध्य गौरव दिखायी देता है। मेरी अकृत्रिम सरल भाषामे आभिजात्य—कुलीनोका गौरव—दिखायी देता है। सच बात है, मेरा बौद्धिक ब्राह्मणत्व सदा सजग है। देख रहा हूँ, कही साम्यवादके गुलदस्तेमे भाँति-भाँतिके सैकडो फूल खिलाने-सजानेकी चर्चा है, कही साम्यवादको व्यक्ति-पूजाके दोषसे मुक्त किया जा रहा है, कही साम्यवादको देश विशेषकी धरा और जन-प्रकृतिके अनुकूल ढाला जा रहा है—और इस सब झमेलेमे साम्यवादका नाम-रूप गुण-आकार तिरोहित होते चले जा रहे हैं। साम्यवाद अपने नये अभियानपर अग्रसर है। वेदोके बाद उपनिषद्, सगुणके बाद निर्गुण—ये सब बौद्धिक द्वन्द्वात्मक सीढियाँ है। अन्तमे एक दिन ये सब नाम और रूप विलीन हो जायेगे। स्वयं कालसे बडा क्रान्तिकारी और साम्यवादी कौन है? केरलमे आज मै हूँ। कल कौन होगा?

मई, १९५८

श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित

यूँ तो जीवनमे कामनाओकी कमी हुआ नही करती, किन्तु यदि कोई वरदानी देवता मुझसे अचानक ही पूछ बैठे कि तुम्हे क्या चाहिए, विना सोचे तत्काल बोल दो, तो शायद मै कुछ भी न कह पाऊँ।...या कह बैठूँ कि गुलदस्तेके गुलाब बदल दो—खूब बडे-बडे और ताजा होने चाहिए; कालीनका रंग मेरी साड़ीसे मैच करता होना चाहिए; इण्डिया हाउसमे तस्वीरोके ये सुनहरी विक्टोरियन फ्रेम बडे ढाबू और बेहूदा मालूम देते है, स्पेनके सलामाका महलमे जो लेकरैड कलरका नाखूनी फ्रेम था उसे तस्वीर समेत लाकर यहाँ सामनेवाले कोनेसे साढे आठ इंच बाये हटाकर लगा दो...। फिर तो सैकड़ो इस तरहकी फरमाइशें निकल आयेगी।

रीता ! याद है न हम चारोने उस रात 'लिटिल-लिटिल विगिज' का खेल खेला था, और मेरी चाहते, तेरी, चन्द्रलेखा और नयनताराकी इकट्ठी चाहतोसे दुगुनी हो गयी थी, और तूने कहा था :

"ममी, यू आर एवर इन्सैशेब्ल (Insatiable)—ममी, तुम तो सदा ही अतृप्त्य हो !"

मैने बात हँसकर टाल दी थी, पर लगी बहुत बुरी थी। बुरी इसलिए लगी थी कि सच है। गहरी तृप्ति जो नारीके जीवनको चारो ओरसे भर देती है, मुझे कही-कही खाली छोड गयी है। सार्वजनिक जीवनके लिए दीर्घ वैधव्य उपयोगी भले ही हो, भारतीय नारीके जीवनका रस यह सोख लेती है।

मै भारतीय नारी हूँ, सोचकर बहुत ही अच्छा लगता है · याद आती है तारोभरी वह निभृत रात जब उन्होने हाथमे हाथ डाले जयदेवके गीत-गोविन्दको स्वरो और मूर्च्छनाओके माध्यमसे सजीव कर दिया था.—

ललित-लवङ्ग-लता-परिशीलन-
कोमल-मलय-समीरे
मधुकर-निकर-करम्बित-कोकिल-
कूजित-कुञ्ज-कुटीरे।

मै विभोरताके उन क्षणोमे जो राधा बनी तो बनी ही रह गयी। गीत-गोविन्दको वह निर्वासिता राधा और उनकी राजतरगिणीकी वह विलुप्त छलछल धारा कभी-कभी प्राणोको बेहद विकल कर देती है।

चिर-कृतज्ञ हूँ जीवनके प्रति कि उसने मुझे वह गौरव दिया जो संसारकी किसी भी नारीको कभी नसीब नही हुआ। कुरसीपर बैठे-बैठे कभी-कभी ऐसी बेसुध-सी हो जाती हूँ कि लगता है सामने यूनाइटेड नेशन्सकी जनरल एसेम्बलीका सैशन हो रहा है, मै अध्यक्षा हूँ और संसारके प्रतिके प्ट्रिनोरिधा एकटक मेरी ओर विमुग्ध दृष्टिसे देख रहे है . 'सो

३

दिस इज़ मदाम पंडित—हाउ कैप्टिवेटिंग ! अच्छा, यही है मैडम पंडित—कितनी मोहक !'

मै अक्सर सोचा करती हूँ कि अँग्रेजी कहावतके अनुसार महान व्यक्तियोकी जो तीन श्रेणियाँ है, उनमेसे मै किस श्रेणीमे आती हूँ—'सम आर बौर्न ग्रेट, सम एचीव ग्रेटनैस, सम हैव ग्रेटनैस थ्रस्ट अपौन दैम'—कुछ व्यक्ति जन्मसे ही महान है, कुछ अपने प्रयत्नोसे महान बनते है और कुछके मत्थे महत्ता मढ दी जाती है। मै स्वयं मानती हूँ कि मै जन्मके कारण ही महान हो गयी; संसारकी नारियाँ कहती है मैने उद्योगपूर्वक महत्ता प्राप्त की; पर ये भारतके पुरुप कैसे है जो अक्सर कहते है कि महत्ता मेरे ऊपर लाद दी गयी। हकीकत यह है कि तीनों ही बातें ठीक है—और यह बात फिर मुझे संसारकी स्त्रियोंके बीच 'अद्वितीय'की श्रेणीमे ला खड़ी करती है।

इलाहाबाद म्युनिस्पैलिटीकी सदस्यतासे लेकर राष्ट्रसंघकी अध्यक्षता तकका फासला कितना, कितना बडा है, सोचकर कल्पना अवाक् रह जाती है। और, आँख-खोलते राष्ट्रके कच्ची भोरेके क्षणोमे रूस जाकर महाप्रतिनिधित्व ! हिम्मत हारने-हारनेको होती थी पर भाईकी थपकी, प्यार और डाँट सब काम कर गये। मेरी सफलता, जो भी, जितनी भी रही है, केवल इस कारण कि मैने कूटनीति बरती ही नही। मेरी असफलता, जो भी जहाँ भी रही, केवल इस कारण कि कूटनीति मै बरत ही नही सकती। (यूँ शायद स्त्रियोंको कूटनीतिकी ज़रूरत ही नही होती, वे जन्मजात कूट-कुशल है !) नई दिल्ली, मास्को, वाशिंगटन, लन्दन, जिनीवा—आज सब मेरे लिए एक है, सबके द्वार सदा-सदा मेरे लिए खुले है—सच्चे अर्थोमे सारी वसुधा मुझे कुटुम्ब-सी लगती है। पर आनन्द भवनकी बात ही दूसरी है। दुनियासे घूम-फिरकर, नई दिल्लीसे ऊबकर, जब आनन्द भवनमे पाँव रखती हूँ तो सुकून और शान्तिकी दुनियामे पहुँच जाती हूँ। पर, यादोंका हुजूम हरा हो जाता है। यादें, जो बीती

हुई दुनियाका वैभव, चमत्कार, हिम्मत, त्याग और महत्ताके अनवरत आतिथ्यको जीता-जागता बना जाती है ! यादे, जो जीवनकी अतृप्तको उकसा जाती है !

जीवनका पट कैसे-कैसे तानो-वानोसे बुना हुआ होता है ! एक रोज वही पट वधूकी ओढनी बन सितारोकी जोतको लजाता है और किसी दूसरे दिन वही पट जीवन-नाटकका पटाक्षेप बनकर कालके घटाटोप तमसे एकाकार हो जाता है !

संयोगकी बात, आज ही १८ अगस्त है। अपने जन्म-दिनकी बात सोचती हूँ तो भाईकी याद बरमला तूफानकी तरह उमड़ आती है। मै उनसे ११ साल छोटी हूँ, यानी वह मुझसे ११ साल बड़े है। इसका अर्थ है कि वह ७० के घाट पहुँच रहे है ! कलेजा धक्से रह जाता है !

अब अगर कोई वरदानी देवता अचानक ही मेरे सामने आकर कहे—बताओ, बिना सोचे तत्काल बताओ, कि तुम्हे अपने जन्म-दिनके दिन क्या चाहिए तो मै उसका सवाल खत्म होते न होते, दोनो हाथ उठाकर कहूँगी—अपने भाईकी दीर्घायु !

अगस्त, १९५८

विनोबा भावे

याद आती है दुर्योधनकी वात, जिसने कृष्णसे कहा था कि मै पाण्डवों-को सूईकी-नोक-बराबर भी जमीन नही दूँगा—'**सूच्यग्रं नैव दास्यामि !**' कृष्ण भी दुर्योधनको प्रतिबोध न दे पाये, और महाभारत छिड़ गया ! यह वही भारत है; बल्कि आजका समाज बीसवी शताब्दीकी भौतिकतामे लिप्त है; फिर भी लोग मुझे हजारों एकड जमीन दे रहे है। जमीन ही नही, गाँवके गाँव मेरे इशारेपर न्यौछावर हुए जा रहे है। प्रेजीडेण्ट राजेन्द्र प्रसादने भी मुझे अपनी जमीनका भाग दानमे दिया और उस अजाने किसानने भी जिसके पास थी ही कुल एक एकड़ जमीन ! उस दिन जब श्रावस्तीकी ग्राम-सभामे प्रवचन देने बैठा और वहाँके किसानोने

अपनी-अपनी भूमिका दान दिया तो मेरी आँखोमे आँसू झलक आये। शायद वही जमीन थी जो भगवान बुद्धके आगमनके समय उनके विहारके लिए भक्त सेठको चाहिए थी, पर भूमिके स्वामी किसानने देनेसे इन्कार कर दिया था। तब सेठने सारी जमीनपर सटा-सटाकर स्वर्ण-मुद्राएँ बिछा दी थी। इतना बडा मूल्य पाकर ही वह धरा तथागतके चरणोका संस्पर्श पानेके लिए तैयार हुई थी। ऐसी मूल्यवान जमीनका भाग पाकर भूदान आन्दोलन यदि गर्व करे तो क्षम्य है।

तर्क समाधान भी करता है और छल भी करता है। इसीलिए कभी-कभी मै गहरे सोचमे पड जाता हूँ कि मेरी आत्मतुष्टि ठीक है या असन्तोष-भावना ही सही है, क्योकि मेरे मनका दोल दो प्रतिगामी दिशाओमे अतिकी सीमा तक झूल-झूल जाता है। जब सोचता हूँ कि लाखो एकड जमीन प्राय बातकी बातमे इकट्ठी हो गयी, जब पाता हूँ कि नैतिकताके मूल्योके प्रति आज भी सर्वसाधारणका जीवन आस्थावान है, जब अनुभव करता हूँ कि नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद और जयप्रकाश अपने-अपने दृष्टिकोणसे, अपनी-अपनी सीमा तक, मेरे नैतिक नेतृत्वको स्वीकृति देते है, जब देखता हूँ कि देशकी जनताने मुझे सन्तके रूपमे अपना लिया है और अनेक विदेशी मुझे सराहा या "The God who gives away land" (वह देवता जो भूमि प्रदान करता है) के नामसे याद करते है तो मेरा मन अपरिमित सन्तोष-से गद्‌गद हो उठता है। तभी मनके झूलेका आवर्त दूसरी ओर पेग भरने लगता है और अनेक प्रश्न, अनेक जिज्ञासाएँ, अनेक संशय मुझे अभिभूत कर लेते है:—

(१) यन्त्रकी गतिसे परिचालित-सा यह जीवन कहाँ जा रहा है, क्यो जा रहा है? उद्देश्य यदि सदा ही सापेक्ष है तो निरपेक्ष अद्वैतकी स्थिति मुझे कहाँ मिलेगी—गतिमे या विराममे?

(२) भूदान, सम्पत्तिदान, जीवनदान, श्रमदान, यह दान, वह दान—दानोकी एक अकल्पित शृंखला मेरे भक्तोने मेरे नामके साथ जोड़कर

शायद जनताके मनको विकेन्द्रित कर दिया है। वैसे भी 'दान'का विचार आजके जागरूक स्वाभिमानी मनको ग्राह्य नहीं। मै बारबार समझाता हूँ कि 'दान'का अर्थ 'सम-विभाजन' ही है; और शब्दके अर्थ रूढ नही हो जाते; देश-कालके नये संदर्भ उनमे नया अर्थ प्रतिष्ठित करते है, फिर भी लोग बराबर वही प्रश्न पूछते है। प्रश्न क्यो आगे बढ़ रहे हैं, समाधान क्यों पिछड रहे है ?

(३) ज्यों-ज्यों अधिक जमीन इकट्ठी होती जा रही है और दानमे प्राप्त गॉवोंकी संख्या बढ़ रही है, आन्दोलनके कन्धे झुकते जा रहे हैं, समस्याओके नये आयाम उभरते आ रहे है। जिन गॉव वालोकी बेबसीने मुझे भूदान-आन्दोलनके लिए प्रेरित किया उन्ही गाँववालोंको आज कैसे इतना सबल मान लूँ कि वे बंजर जमीन उपजाऊ बना लेंगे, उपजाऊ जमीनको जोतने-बोनेके लिए स्वावलम्बी साधन भी जुटा लेंगे और सरकारी सहायताकी अपेक्षा न करके स्वयं ही ग्रामदानमे प्राप्त गाँवोंकी सुव्यवस्था जमाकर उन्हे देशकी सरकारके सामने आदर्श मौड़लके रूपमे प्रस्तुत करेंगे।

प्रश्न और भी बहुतसे है। इनके समाधान भी मेरे मनमे है। आस्था हार नही मानती, और मनुष्यकी क्षमता अपरिमेय है, फिर भी मन शंकालु हो जाता है। सारे आन्दोलनका प्रत्यक्ष परिणाम जनताके वास्तविक सुखके रूपमे आँकनेके लिए अभी कोई आधार सामने नहीं आया। डर है कि भूदान आन्दोलनकी योजनाएँ सरकारी योजनाओंकी तरह केवल चर्चाका विषय बनकर ही न रह जायें।

लोग आपसमे प्रश्न पूछते है, "नेहरूके बाद कौन ?"। ठीक है, राजनीतिके क्षेत्रमे यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि प्रश्न गद्दीका है, सत्ताका है, प्रभुताका है! ये भले आदमी यह क्यो नही पूछते कि विनोबाके बाद कौन ? विनोबाकी बात यदि नही माननी है तो नेहरू रहे तो, और नेहरूके बाद कोई भी आये तो, फर्क कुछ नही पडेगा क्योंकि परिणाम

दिखायी दे रहा है—सब अशुभ ही अशुभ है। किन्तु यदि विनोबाकी बात माननी है तो देशके सामने प्रकाश ही प्रकाश है—तब नेहरूका अस्तित्व-अनस्तित्व गौण हो जाता है। इसीलिए सोचता हूँ कि प्रश्नका ठीक स्वरूप होना चाहिए—'विनोबाके बाद कौन ?'

भगवानकी सत्ताके बाद यदि कोई अन्य सत्ता प्राणोमे स्पन्दित होती रहती है, तो वह है गाँधीकी सत्ता। बापूने मुझमे क्या देखा था जो सन् १९४१ के भयावह असहयोग आन्दोलनका नेतृत्व, उसका श्रीगणेश, मेरे हाथोमे सौपा ? नेहरू, राजेन्द्र प्रसाद, पटेल, आजाद सभी तो तपे-मँजे सेनानी उनके सामने थे। पर काँटोका वह ताज बापूने मुझे ही पहनाया। मेरा जन्म उसी दिन धन्य हो गया। बेशक गाँधीकी राजनैतिक विरासत नेहरूको मिली है, घोषित होकर मिली है, किन्तु किसीकी हिम्मत न हुई कि उनकी नैतिक विरासतका भार सँभालता। ज्वालाओका हार मैने ही पहना है, 'क्षुरस्य धारा' पर पाँव रखकर मै ही चला हूँ, मै ही चल रहा हूँ।

भूदान, सम्पत्तिदान, जीवनदान, सब अपने स्थानपर ठीक है, किन्तु आज, इस क्षण, जो चिन्ता मेरे मर्मको कुरेद रही है वह है गाधीके उस अधूरे कामको पूरा करनेकी, जिसकी परिधि राष्ट्रोकी सीमाओको पार कर गयी है और जो विश्वके मानसपर प्रश्नचिह्न बनकर अंकित हो गयी है—अहिसाके प्रयोगोका काम, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रकी स्थायी शान्तिका काम, सेनाके मुकाबलेमे सत्यकी विजय प्रमाणित करनेका काम।

मेरी पद-यात्राओके कार्यक्रमने संसारके मनको बाँधा है। जहाँ-जहाँसे गुजरता हूँ लोगोकी चेतनाके परदे झकृत हो जाते है। प्रभावकी दृष्टिसे बहुत बडी उपलब्धि है। लोग मुझसे पूछते है कि स्थायित्वकी दृष्टिसे उपलब्धिका मूल्य क्या है ? मै उत्तर नही दे सकता। राम भी हुए, कृष्ण भी हुए, बुद्ध भी हुए, गाँधी भी हुए—कालकी कसौटीपर आज किस-किसकी उपलब्धियोका मूल्य हम आँकेगे ? 'सत्यमेव जयते' का विरुद

अपने राज्यका आदर्श वाक्य बनाकर हमने गाँधीको गोली मार दी। विनोबाके भाग्य कहाँ कि गाँधी की-सी गोली, ईसाका-सा क्रूस और सुकरात का-सा प्याला वह पाये ! किन्तु विनोबाका यह परम सौभाग्य है कि वह गाँधी, ईसा और सुकरातकी प्रेरणाओको अपने जीवनमे जाग्रत करनेका प्रयत्न करे ! यही प्रेरणाएँ मुझे खीचे ले जा रही है, देशके एक छोरसे दूसरे छोर तक। मालूम नही इस पृथ्वीका प्राणी भी हूँ कि नही। बाबाकी जय दिशाओंमे गूँजती है, बाबाके पीछे श्रद्धालुओकी भीड़ चलती है, बाबाके प्रवचन हजार-हजार हृदयोंपर अंकित होते चले जाते है। पर बाबा जैसे इन सबसे असम्पृक्त है, अपने हीमे डूबा-डूबा कही कुछ पानेके लिए अपनेको खोता जा रहा है। इस बाबाको मै जैसे सामने खड़ा करके देखता हूँ और उसकी प्रामाणिकताको पग-पगपर चुनौती देता हूँ। यही प्रक्रिया मुझे सीधे रास्ते ले जा रही है। जा रहा हूँ, राजस्थानसे कश्मीर-की ओर, कश्मीरसे पंजाबकी ओर, पजाबसे मध्यप्रदेशकी ओर—डाकुओके अंचलमे। नैतिक शास्त्रके परीक्षणका स्थल तो वही है।

बुद्ध और गाँधी सूरज थे, जो संसारको अजस्र प्रकाश देते थे। मेरी महत्त्वाकांक्षा मात्र इतनी है कि मै आग बनूँ जिसपर लोग अपने चावल पका सकें। आगकी शिखा न बन सकूँ तो चिनगारी ही बनूँ। चिनगारी भी न बन सकूँ तो गाँधीकी चिनगारीकी भस्म ही बन जाऊँ, यही बहुत है।

सह-यात्रियो ! विनोबा आज है, कल यहाँ नही होगा। किन्तु विनोबाके विचार बोलते रहेगे, उसके परीक्षण अहिसाके प्रयोगोकी एक मंजिल बने रहेगे और तब कोई आयेगा जो गांधीके अधूरे कामको पूरा कर देगा। विनोबाका दर्शन तब अपनी विसंगतियोसे मुक्त हो जायेगा।

मार्च, १९५९

नये रंग : नये ढंग

- गंगा-वोल्गाके संगमपर
- असीम आकाशके बियाबानमें
- बापूके वारिसोंके नाम
- डियर आइक !
- नये वर्षकी नयी डायरियाँ
- एक डाकू, दो खत, तीन दृष्टियाँ
- माई डियर कैनेडी
- मौत—एक माध्यम
  डायरीके कुछ पृष्ठ
- चाँद-तारोंकी दुनियाकी ओर
  —ख़बरें और हाशिए

गंगा-वोल्गाके सङ्गमपर

बहुत देर तक पॉकेटे टटोलने, हैण्ड-बैग उलटने और इधर-उधर ताकने-झाँकनेके बाद जब उन्हे अपनी डायरियाँ, टिप्पणियाँ और पत्रोकी कतरने नही मिली तो वे सब-के-सब सरदीमे ठिठुरते, भूखे-प्यासे थाने पहुँचे थे। थानेदारने बड़े इतमीनान और आत्म-विश्वाससे इन पत्रकारोंको समझाया कि आखिर पुरानी रद्दी डायरियोके लिए वे क्यो परेशान हो रहे हैं; नये सालकी नयी डायरियाँ खरीद लें! पत्रकारोके मनकी व्यथा मुझसे न देखी गयी और मैंने तभी निश्चय कर लिया कि उनकी चीज उजागर रूपसे उनके पास पहुँचा दूँगा। सो, वे सारे 'नोट्स' ज्यो-के-त्यो यहाँ छप रहे है।

मुझे अब चोरीके पापका डर भी नही। इसलिए कि फेनोज्ज्वला गगा तो अपनी थी ही, अब 'लाल धरती'की रक्त-दर्शनी वोल्गा भी डुबकी लगानेके लिए सुलभ हो रही है। तो लीजिए, यहाँ-वहाँसे उठाकर टिप्पणियाँ दे रहा हूँ। रिपोर्टर लोग अपनी-अपनी चीज स्वयं पहचान जायेगे। मेरी जिम्मेदारी—गैर जिम्मेदारी—पूरी हुई—

१८ नवम्बर १९५५ : आकाशवाणी दिल्ली

गुलावी जाडेका यह चमकता प्रभात, और इतिहासको मथकर शान्तिका अमृत और ध्वंसका विष संग्रह करनेवाली गोपी यह अक्षययौवना दिल्ली! कैसी सजी है आज यह! हमारे प्यारे यह सहस्र-सहस्र तिरंगे जिनसे गले मिल रहे है वे हजारो हँसिएँ-हथौडेवाले लाल-लाल झण्डे! द्वार सजे है, स्तम्भ सँवरे है, तोरण झूल रहे है; अल्पनाएँ चित्रित है, फूल मुसकरा रहे है, हवा थिरक रही है, झूमती डालियोसे छनती हुई फुरहरी धूप हँस-हँसकर वुला रही है; और इस निमंत्रणको स्वीकार करनेवालोंकी संख्या—जो यहाँ सामने है, आगे है, पीछे है, ऊपर है, पाँतकी पाँत दूर-दूर तक फैले हुए है—कितनी है? हजार? इतने तो ये खडे है। दो हजार? ये तो सामने है ही। नही साहव, ५-१०-५०-१०० हजार? इससे भी ज्यादा? सोचिए, अनुमान लगाइए! १२ मील तक इकहरी, दोहरी और तिहरी कतारोमे खडे पालम एअरोड्रोमसे किचनर रोड, विलिग्डन क्रेसेंट, राज-पथ, जन-पथ, कैनॉट सर्कस, राष्ट्रपति भवन तक १० लाख ...१० लाख आदमी...!

ये आकाश-वाणी दिल्ली है। आप अभी किचनर रोडके रेडियो मंचसे रूसी मेहमानोके स्वागत-समारोहका हाल सुन रहे थे। अब इधर आइए पालम हवाई अड्डेपर। एक सागर उमड़ आया है! मेरे सामने पचास हज़ार आदमी हैं। हाँ, ५० हज़ार! लेकिन इनमे २५-३० हजार तो वालक-वालिकाएँ है! शोर वढ रहा है। ऊपर आसमानमे घरघराहट गहरी

हो गयी। फ़ौजी दस्ता 'ऐटेन्शन' की भाव-मुद्रामे आ गया। हाँ, यह फ़ौजी हुक्म हिन्दीमे दिया गया है! बैण्ड जोर-जोरसे बजने लगा! ये उतरा रूसी हवाई जहाज—नं० ००१। भीड़ उतावली हो गयी—आगे बढ गयी। ये क्या? पण्डितजी! पण्डितजी! बुल्गानिन—ख्रुश्चेव! ओह शोर बढ रहा है। अपने आपको भी नही सुन पा रहा हूँ!

लीजिए माइक्रोफ़ोन हवामे लटका देता हूँ—सुनिए जो भी सुन सकें।

[रेडियो कमैण्ट्रीका अंश]

*　　　　*　　　　*

आप लोग लाइनमे खडे रहिए! मेहमान आ रहे है। मोटर धीरे-धीरे चलेगी। आप अच्छी तरह देख सकेगे—घबराइए नही।....

ओ फकीरा! अबे कहाँ टँग गया दरख़तपर!....बोल तो बे! वहाँसे दिखाई दे रिया है तुझे? मै तो ये रिया बे! वो देख आ रहे है! आ गये—वो! देख-देख, पण्डतजी कैसे मुसकरा रहे है। एक तरफ़ ये छोटी दाढीवाला आदमी मुसकरा रहा है। यही है वे बुल्गानी? और वह सफाचट सरवाला? खूब खुश हैं वह तो!....

ओ देखिए मिस्टर सोनी! हाँ मिसेज तनेजा आगे आ जाइए आप, यहाँ। ये फेकी फूलोकी माला वापिस जनताकी ओर! ये ख्रुश्चेव है?....

अरे, वो उधर देखो, हाथी! सजा-धजा सूँड उठाये मेहमानोंको सलाम कर रहा है! कार आगे बढ़ गई पर बुलगानिन साहब पीछे हाथीकी तरफ ही देखे जा रहे है।....

वाह प्यारे क्या ठाठ है! क्या दरबारी साफा बाँधा है ज्वानने! कैसी प्यारी शहनाई बजा रहे है!

[उड़ती हुई आवाजें]

१७ नवम्बर, १९५५

पुलिस कप्तान और दीगर महकमोसे सुजानसिंह हवलदार जो खबर लाया था उसे दर्ज कर लिया गया है, अखबारके लिए—

रूसी मेहमानोका स्वागत शानदार होगा ऐसी उम्मीद है।

अन्दाज है कि ५-७ लाख आदमी जुलूस देखने आयेगे। कुछका ख्याल है कि २ लाख भी नही हो पायेंगे। बशीर अहमदने साहबको रिपोर्ट दी है कि १५ लाख आदमियोंका जुलूस उमड़ पडेगा।

सवारीकी दिक्कत होनी नही चाहिए, क्योकि दिल्लीमे १५ हजार प्राइवेट कारे है, ५०० बसे है, ७५० टैक्सी, १५०० ट्रक, ६०० मोटर-रिक्शा, ३ हजार ताँगे और ३ लाख साइकिलें है।

१२ मीलके रास्तेमे ४० प्याऊ लगा दी गयी है। ५०० ट्रैफ़िक पुलिस और ३ हजार स्वयंसेवक।

गामको नागरिकोकी ओरसे रामलीला ग्राउण्डमे मानपत्र दिया जायेगा। उस वक्त हो सकता है १० लाख आदमी इकट्ठे हो जाये! १० लाख आदमी आजतक इतनी थोडी जगहमे इकट्ठे नही हुए।

दिल्लीकी सभाओमे माइक्रोफोन अकसर खराब हो जाता है, बिजली उड जाती है। इसका इन्तजाम कर लिया गया है। ४ ऐम्प्लीफायर ७५ लाउडस्पीकरोंको चलायेगे। साढे तीन-तीन सौ किलोवाटके दो सब-स्टेशन वही रामलीला ग्राउण्डमे बिठा दिये गये है। दो जेनरेटर सेट फालतू रख लिये गये है। अब क्या डर?

[फुटकर नोट्स]

२० नवम्बर, १९५५

"प्रणाम गुरुवर! इधर दो दिनसे राजधानीमे जो दृश्य दिखायी देते रहे है उनके सम्बन्धमे आपका मत जाननेके लिए 'भारत-मित्र'ने मुझे विशेष प्रतिनिधिके रूपमे आपके पास भेजा है। क्या मन्तव्य है?"

"जो कुछ हो रहा है वह उन्माद है, पागलपन है। किसी भी वयस्क और समझदार राष्ट्रको इस प्रकारका वचपन शोभा नहीं देता। ये लक्षण रसातल जानेके है।"

"किन्तु यह तो आतिथ्य है। भारतीय सभ्यता अतिथियोके प्रति विशेष रूपसे श्रद्धालु होती रही है और जब पण्डितजीको वहाँ अभूतपूर्व, अविस्मरणीय स्वागत मिला तो क्या हमारा यह कर्त्तव्य नही हो जाता कि हम भी तदनुरूप आचरण करें? इस स्वागतसे भारतीय सस्कृतिको बल मिला है, गुरुदेव!"

"भारतीय संस्कृतिके सम्बन्धमे ऐसी अनधिकारसूचक बात कहना ठीक नहीं। भला क्या बल मिला है?"

"दो बाते तो बहुत स्पष्ट है, जो आपको प्रिय है। एक तो अनुशासन और दूसरे भारतीय संस्कृतिके कलात्मक रूपका अभिनन्दन! कहाँ कल्पना की थी कि लाखों आदमी इतने धीरज और शान्तिसे घण्टों खड़े रहकर प्रतीक्षा करेंगे, सभामे शान्त बैठेंगे और धक्का-मुक्की नही करेगे? द्वार, तोरण, अल्पना, कुमकुम, तिलक, फूलमाल, साँची स्तूपकी अनुकृतिका सिहद्वार, सारनाथके नमूनेका कलात्मक मंच!"

"हे भगवान जो राष्ट्र इस भुलावेमे आ सकता है वह कितना भोला है!"

"अपने-अपने मतके सब स्वामी! नमस्कार...."

(सम्पादक, भारतमित्र, कृपया इसे इसी रूपमें छापिए।)

३० नवम्बर, १९५५

प्रिय अरुण,

अमेरिकाके अखबार पढते-पढते मै तो समझ बैठा था कि रूसी लोग निरे ही रूखे है जो हँसना नहीं जानते, घुलना-मिलना नही जानते और

जो मशीनकी भाँति सदा कठोर कर्त्तव्य-रत है। पर सच, ये तो बडे मजे-दार आदमी हैं। ख्रुश्चेव तो बस एक ही है। चुटकी लेनेसे चूकता नहीं। हमेशा खुश और हँसमुख।

हमारे यहाँ आकर उन्होने क्या-क्या भेप नही धरे? बम्बईमे गाँधी कैप लगाकर मंचपर आये, लखनऊमे सलमे-सितारेकी टोपी पहनकर छैला बन गये, जयपुरमे वह राजस्थानी साफा बाँधा कि लोगोकी टकटकी लग गयी। यो तिनकोका हैट ओढकर दोनो आये थे, जो बुल्गानिनके सरसे तो नाँगलके रास्तेमे उडकर हवामे लहराता नदीमे चल दिया था। फ़ौरन हमारा पुलिस अफसर कूद पडा और खोज-पकडकर लाया उसे। राजनीति और कूटनीतिकी बात तो तुम ज्यादा समझते हो, एडीटर जो हो; लेकिन हँसी-मजाक और खेल-कूदकी बातोसे इन्होने सबको मोह लिया है।

आजतक ५०० बच्चोको रूस आनेका निमन्त्रण दे चुके हैं। सबके नाम नोट कर लिये है—मुर्गीके चूजेसे भी खेल करते है और शेरके बच्चेसे भी! तराईमे हाथीपर चढे-घूमे। सोनीपतमे रोहतकके योगीकी करामात देखी। नीलगिरिमे जायके ले-लेकर नारियलका पानी पिया और होड़ लगाने व शर्त्त बदनेको तो हरवक्त तैयार। भाखरा बाँधके अमरीकन इजीनियरसे बोले, 'आ जाओ, आपसमे जगह बदल ले! तुम रूसमे जाकर मेरा काम करो, मैं अमेरिका जाकर तुम्हारा काम करूँगा। मगर तुम तो पासपोर्ट भी मुझे नही दोगे!' पटियालेमे एक सरदारजी दाढ़ी थपथपा रहे थे तो बुल्गानिन साहब उनसे उलझ गये। लगे अपनी भी दाढी थपथपाने। कॉम्पिटीशन हो गया दोनोमे! एक आदमी जब इनके देखते-देखते ३० फुट ऊँचे नारियलके पेडपर चढ़ गया तो ख्रुश्चेव शर्त्त लगाकर खुद ही चढनेको तैयार हो गये। बम्बईमे सर होमी मोदीसे बोले, 'अरे भाई, हम तो जहाजमे ही थोड़ी-बहुत पी-पा आये। अगर पता होता कि तुम्हे वोडका इतनी पसन्द है तो मैं तो आस्तीनमे छुपाकर तुम्हारे लिए ले आता। जानता हूँ न कि शराबके लिए ये इलाका खतरनाक है, क्योकि ये

४

महाशय…! (और शरारतभरी आँखसे मुरारजी भाईकी ओर इशारा कर दिया !) गर्ज ये कि क़दम-कदमपर छेड़छाड़, चुहलबाजी !

तुम्हारा क्या ख्याल रहा इन लोगोके बारेमे, कुछ सुनाओ न ?

अभिन्न,
रमेश

प्रिय रमेश,

कितनी ऊपरी और सतही है तुम्हारी दृष्टि ! आ गये रूसी चक्करमे ? भाई जान, राजनीतिके ये चतुर खिलाड़ी भावुक भारतीयोंको मोहने आये है। इन्हे खूब मालूम है कि जनताका मन किस पदार्थका बना होता है और कहाँ क्या दाँव काम देता है। तुमने इनके खेल-खिलवाड़ देखे, ये न देखा कि हमारी धरतीपर इनके सब्ज क़दम क्या गुल खिला जायेंगे ?

रूसियोकी होशियारीकी दाद तो देनी ही होगी। हमारे सरल हृदय पण्डितजीको रूसमे अद्वितीय स्वागत देकर इन्होने प्रेमसे उन्हे अपने क़ाबूमे कर लिया और अब यहाँ आये तो करोड़ो कण्ठोसे पुकार लगवा गये : 'हिन्दी-रूसी भाई-भाई !' आजतक हमने और किस राष्ट्रके लिए ऐसा नारा लगाया ? भाई-भाईका कुछ अर्थ होता है जो हमारे हर किसान, हर मजदूर, हर माँ-बहनके दिलमे गहरे भाव जगाता है। खासकर इतने बड़े स्वागतके साथ ? आम आदमीके लिए अब भारत और रूसमें कोई फ़र्क न रह जायेगा।

और गजब ये कि हमारे देशमे आकर हमारी पर-राष्ट्र नीतिका प्रचार इस जोर-शोरसे कर गये कि हम लोग भौचक्के देखते रह गये। लन्दनमे शोर मच गया, अमेरिका हिल गया, पाकिस्तान चीख उठा ! और दोस्त, तुम खुश हो कि खूब तमाशा रहा ! बडे खुश-मिजाज आदमी है ! भगवानने बुद्धि दी है तो उसे इस्तेमाल करना भी सीखो।

सदा तुम्हारा,
अरुण

* * *

"भारतीय महिलाओंके हँसते मुख, यहाँकि मुलायम रेशमी वस्त्र और महकते फूल—ये हम कभी न भूल सकेंगे।"

—[बुलगानिनकी टिप्पणी]

* * *

यह प्राइवेट मीटिंग हमने इसलिए बुलायी है कि हम कौमरेड बुल्गानिन और कौमरेड ख्रुश्चेवकी यात्रासे फायदा उठायें और पार्टीकी मेम्बरशिप बढायें। ऐसा मौका बडे भाग्यसे मिलता है। आप लोगोंने पिछले चन्द दिनोंमें जो कोशिश की है उसके नतीजेपर हम सब विचार करेंगे। अगले एलेक्शनमें हमारी जीत निश्चय होगी।"

"कौमरेड प्रेजीडेण्ट, मेरा प्रस्ताव है कि इस विषयपर वाद-विवाद न उठाया जाये। प्रचार उपसमितिकी रिपोर्ट पहले सुन ली जाय, कौमरेड सुराना रिपोर्ट पढ दें।"

"बहुत अच्छा जनाब। सुनिए, 'स्थानीय कम्युनिस्ट पार्टीकी कार्यकारिणीने २० नवम्बरको प्रस्ताव नं० ६ के अनुसार जो उपसमिति नीचे लिखे ५ सदस्योंकी·· ····

"देखिए कौमरेड सुराना, आप सारी रिपोर्ट न पढें, मोटी-मोटी बातें बता दें।"

"मोटी-मोटी बात तो महज इतनी है कि कम्युनिस्ट पार्टीकी जो बुरी हालत इस यात्रासे हुई है और उसकी प्रेस्टीजको जो धक्का लगा है उसे बयान नहीं किया जा सकता। मैं पूछता हूँ आज जब कि कम्युनिस्ट पार्टीको सारे स्वागतका इन्तजाम करना चाहिए था और सबसे आगे रहना चाहिए था, वहाँ हमारी पार्टीको कोई पूछनेवाला भी नहीं।"

एक आवाज—"जी यह सब पण्डित नेहरूकी मेहरबानी है।"

दूसरी आवाज—"आप मुझे माफ करें। पण्डित नेहरूके अलावा और भी कोई जिम्मेदार है। याद है आपको अम्बालेमें क्या हुआ? पंजाबकी विधान-सभाके सदस्य अपने एक कौमरेडका परिचय जब कौमरेड बुल्गानिनसे

करवाया गया तो कौमरेड बुलगानिनने कोई खास दिलचस्पी नही दिखायी और कह दिया, 'हाँ, ठीक है मेरे लिए यही जानना काफी है कि ये हिन्दुस्तानी है।'

सभापति—वाह क्या बात कही है! कौमरेड, समझो इस फिकरेके मतलबको! कोई भी आदमी जो हिन्दुस्तानी है, कौमरेड है और इस तरह कम्युनिस्ट है........

सब—यह सब धोखा है।

सभापति—खामोश...मीटिंग बर्खास्त....

१२ दिसम्बर,

अमेरिकी पत्रके सम्पादकीयका एक अंश

"ये दो चालाक और खुर्राट सौदागर अपना माल बेचने निकले है। जो देश आज कहते है कि हम किसी दलमे शामिल नही, उन्हे यह झाँसेमे ले आयेगे और कलको रूसकी लोहेकी दीवार खिचकर उन देशोंके चारों ओर भी खड़ी हो जायगी। हिन्दुस्तानको अब हक नही कि अपनेको निष्पक्ष माने। उसने रूसके हाथमे अपनी नकेल दे दी है। रूससे हिन्दुस्तानको क्या मिलेगा? दोस्तीका दम और सहायताका वचन। सहायता नहीं मिलेगी। दस लाख टन लोहा तीन सालमे। उधार कुछ नहीं। इंजीनियर आयेगे जो खदानोका खजाना हथियायेगे। जहाज आये-जायेंगे। नक्शे बनेगे, बातचीत होगी—बस बातें ही बातें। दूसरी तरफ अमेरिका: इतना कुछ दे चुका है और बराबर दे सकता है!"

१३ दिसम्बर, १९५५

रूसी नोटका अंश (गुप्त)

प्रोपैगैण्डा कोई हमसे सीखे। अमेरिकाके लिए हमने कितनी अपनाअत दिखाई है। भाखरा बाँधके अमेरिकी इजीनियरसे हमने कहा कि अमेरिकाने अक्टूबर क्रान्तिके बाद हमारी बड़ी मदद की थी, हमने अमेरिकासे बहुत कुछ

सीखा, ये बात दूसरी है कि आज हम बराबरीके दर्जेपर आ गये। पत्र-कारोको हमने अपना वह पैन भी दिखाया जो अमेरिकन सेनेटरने हमे भेट किया था। हमने उसे वापिस भी करना चाहा था, और फिर भी पास रख लिया। देहलीकी नुमाइशमे सबसे अधिक समय हमने अमेरिकी स्टालमे लगाया। उनकी साइन्सके जादूके खेल भी देखे। इसी बीच हमने सबसे बडा हाइड्रोजन बम छोड दिया, फिर भी बमबन्दीकी आवाज़ हमारी ही सबसे ऊँची रही। हिन्दुस्तानके दिलको हमने जीत लिया। हिन्दुस्तान अब कौमनवेल्थका साथी नही, रूसका साथी है।

१४ दिसम्बर, १९५५

वह अपने आपसे बाते कर रहे थे। मेरे दिलमे गूँज उठ रही थी—

"आखिर पश्चिमी अखबारोकी ये क्या हिमाकत है? हम अपने मेहमानोको बुलाते है, उनका स्वागत करते है, तो आप चिढते क्यो है? हाँ, ये करोडो आदमी मैने इकट्ठे किये थे। 'हिन्दी-रूसी भाई-भाई'का नारा मैने बनाया था। मै जानता हूँ अपने मुल्कको। मैने अनुशासन और डिसिप्लिनकी ताकीद की थी तो ७ लाख आदमी दम मारे बैठा रहा, और जब मैने कहा कि आप भी अपनी रायका इजहार करे तो रूसी मेहमानोके हर फिकरेपर तालियाँ बजायी गयी।

"जब बिधान बाबूने कहा कि विवेकानन्द रोड और चित्तरजन एवेन्यू-के सगमपर रूसी मेहमानोका प्रोसेशन और जैन रथ-यात्रा आ मिले, उस वक्त अगर कुछ और पुलिस अपने पास होती तो भीड़ बेकाबू न हो जाती और मेहमानोको पुलिसकी बन्द लौरीमे न बिठाना पडता, तब मैने जो कहा वह ठीक ही था—'बिधान बाबू, पुलिसकी कमीकी बात नही, असली कमी उस मौकेपर किसी और हीकी थी—मेरी! सचमुच ऐसी भीड, कभी वहाँ नही देखी—हर दिल मेरा अपना, हर धडकन मेरी अपनी' "

मै पूछता हूँ अमेरिकासे, इंग्लैण्डसे, फ्रान्ससे, दुनियासे, क्या हमने हर भाषणमे, हर मानपत्रमे, हर मौकेपर यह साफ नही कर दिया कि

हिन्दुस्तान और रूस दोस्त है जरूर मगर हम दोनोके रास्ते और तरीके अलग-अलग है। क्या रूसियोंने भी यह बात बार-बार नहीं दुहराई ? हिन्दी-रूसी भाई-भाई, बिलकुल सही; पर क्या मैने यह साफ नही कर दिया कि हमारी सभ्यतामे तो सारी दुनिया ही कुटुम्ब है। जब रूसियों-ने कहा कि रूस और हिन्दुस्तान एक-दूसरेकी भलाईके लिए मित्रताके बन्धनमे बँधे है, उस समय क्या मैने यह खुलासा नही कर दिया कि रूस और हिन्दुस्तानकी मित्रता सारी दुनियाकी भलाईके लिए है ?

ठीक है। हमारे मेहमान थे; आये, हमने उनका दिल खोलकर स्वागत किया। कुछ सीखा, कुछ सिखाया, कुछ अपने राष्ट्रकी चेतनाके दर्शन किये। वह खुश है ! हम खुश है। हमारा अपना रास्ता, अपना आदर्श हमारे सामने है। बडे-बड़े मसले है जिन्हे सुलझाना है—आपको और हमे मिलकर।"

क्या बताना होगा कि यह सच्ची, सधी और सबल आवाज किसकी है?

वही भारतकी आवाज नही है क्या ?

जनवरी, १९५६

असीम आकाशके बियाबानमें

"हाय ! इन हत्यारोंने एक बेजबान कुत्तेको दम-घोट पिंजरेमें बन्द करके जमीनसे ९०० मील ऊपर असीम आकाशके बियाबानमें मरनेके लिए धकेल दिया ! घण्टेमें १८०० मील और हर सेकेण्डमें ५ मीलकी रफ्तारसे घूमनेवाला यह पिंजरा कब फट जाये, कब किस टूटते तारेसे टकराकर चूर-चूर हो जाये, कब किन नक्षत्रोंकी जलती-बलती धूलमें धँस कर खाक हो जाये—क्या पता ! इस बेचारे, प्यारे झबरे कुत्तेके प्राण संकटमें हैं। हे दयालु प्रभु ईसा, तू इस नन्हीं जानको बचा ! तेरा करिश्मा इन पापियोंके करिश्मेसे कितना बड़ा है, यह आज दुनियाको दिखा दे ! तू रहीम है, तू करीम है, हम तेरे नाचीज बन्दे आँसुओंसे

तर अपनी यह दुआ तेरे हुजूरमे पेश करते है कि तू इस गरीब बेपनाह जानवरकी जान बचा !"

और ब्रिटेन, योरप, अमेरिकाके गिरजोंके घण्टे इतने जोरसे बजे कि ईसामसीहके लाखों क्रूसोंके ठण्डे पत्थर झनझना उठे। और पादरियोने घुटनोके बल बैठ, करुणाका पोज बना इस अदासे हाथ उठाये और भर्रायी आवाजमे इस अन्दाजसे 'आमीन' कहा कि मुझे खुद अपने ऊपर तरस आने लगा। मेरे आँसू आने-आनेको हो गये। (लेकिन यहाँ मुझे न आँसू आ सकते है, न पसीना)।

मै ही लायका हूँ; कुद्रयावका; लैमनचिक !

दोस्तो ! खुदाके वास्ते मुझपर तरस न खाओ। अगर मुझे मरना ही है तो बहादुरीकी मौत मरने दो। मेरा यह गौरव मुझसे न छीनो कि चाँद-तारोकी यात्राका युग मेरे सफरसे शुरू हुआ और मै इस जमीनका पहला जीवित प्राणी हूँ जिसने ब्रह्माण्डकी पहली धूमिल झलक अपनी आँखोसे देखी। मेरी जिन्दगीका मिशन शानदार है। तुम्हारे आँसुओ और तुम्हारे उच्छ्वासोसे वह बहुत बडा है। तुम मुझसे कुछ पूछना चाहते हो तो पूछो, सुनना चाहते हो तो सुनो !

....शुक्रिया, कि तुमने मेरी बात मानी और आँसुओका नकाब हटाकर अपना असली चेहरा लिये मेरे सामने आ गये। हाँ, हम 'कौस्मिक-रेडियो-वेव' (ब्रह्माण्ड रेडियो-तरंग) की भाषामे बोलेंगे। सुन रहे है न ? बीप....बीप....बीप ...।

यहाँ, मेरे सामने जो टेलेविजन प्लेट लगी है उसपर तेजीसे घूमती हुई पृथ्वीके सब चित्र आ-जा रहे है। यहाँ प्रत्येक दृश्य ध्वनिमे बोलता है और प्रत्येक ध्वनि दृश्य बन जाती है। पर यह सब तो तुम्हे मालूम है। न भी मालूम हो तो तुम जो भी सोचोगे मै उसे समझ लूँगा। काश, तुम देख पाते कि विश्व-ब्रह्माण्डके इस कक्षमे बैठा प्राणी पृथ्वीके आकर्षण-

विकर्षणसे ऊपर उठकर, अपने व्यवहार-विचारमे, अपनी क्षमताओंमें क्या-से क्या हो जाता है !

मुझे यहाँ कैसा लगता है ? मै समझता था तुम्हारा पहला सवाल यही होगा। क्योकि तुम अखबारके आदमी हो और अखबारकी दुनिया-की बुनियाद ही कुत्तेके सिद्धान्तपर आश्रित है। तुम्हारे अखबारोका उसूल है : "अगर कुत्ता आदमीको काटे तो वह 'खबर' नही; हाँ, आदमी अगर कुत्तेको काट खाये तो वह 'खबर' मानी जायेगी।" सब कुछ छोडकर यह आदमी और कुत्तेका सम्बन्ध ही अखबारवालोको क्यो सूझा ? मै हैरान हूँ। लेकिन, असली सवालसे हम हट गये· मुझे कैसा लग रहा है ?

मै बता चुका हूँ, मुझे एहसास है कि मै आज दुनियाका सबसे महत्त्व-पूर्ण, सबसे अद्भुत प्राणी हूँ। सबकी जबानपर मेरा नाम है, सबके मन-मे मेरा ध्यान है, सबकी कल्पनामे मेरे भविष्यके बारेमे नुकीला प्रश्न-चिह्न है। आजके क्षणकी इस गौरव-गरिमामे डूबा-बैठा मै पुलकित हूँ—और क्या कहूँ ? मेरी एक-एक साँस, हृदयकी एक-एक धड़कन, शरीरके क्षण-क्षणका ताप कण-कणका रक्तचाप यन्त्रोके हृदयपर अपनी कथा लिखते जा रहे है। गुर्राता हूँ, भौकता हूँ या कुनमुनाता हूँ तो यह छोटा-सा माइक्रोफोन रेकार्ड करता चला जाता है।

पिंजरेमे हवाका दबाव मेरी सुविधाके अनुसार सीमित कर दिया गया है। हजार मीलकी ऊँचाईपर इस कृत्रिम उपग्रहको जिस वातावरणमे घूमना पडेगा और विशेष धातुओसे बनाये गये इसके दुर्भेद्य आवरणको जिस गर्मी-सर्दीको झेलना पड़ेगा, उसके हिसाबसे पिजरा कुछ गर्म कर दिया गया है। खाने-पीनेका सुभीता है। पर भूख तो जैसे गायब हो गयी है। इस महत्त्वपूर्ण यात्राके लिए मुझे महीनो सधाया गया है।

'सधाया गया है' कहनेपर आपके मनमें सर्कसके उस मास्टरकी मूर्त्ति आ जायेगी जो हण्टर लेकर शेरसे खेल करवाता है। वैसा मेरे साथ

नही हुआ । मैने तपस्वियो जैसी साधना की है । खड़ा हुआ तो हफ्तों ही खड़ा रह गया । हफ्तों नहीं खाया, पानी नही पिया, हिला नही, डुला नही । मनमे कहाँसे यह अन्तर्दृष्टि आ गयी कि मेरी साधना किसी नये युगकी नीवका शिलान्यास बनेगी । आज जैसे जीवनकी चरम सिद्धि सामने है । पैदा हुआ था तो माँ मर गयी, बापने कभी मेरी परवाह नही की; सिरजनहारने सिरजा और पालनहारने पाला !"

"यह तो हुई फिलासफीकी बात ! क्या तुम्हे यह महसूस नही होता कि रूसने तुम्हे बलिदानकी बेदीपर इसलिए चढा दिया कि वह तुम्हारी वेदना और तुम्हारी मौतसे अपने अनुभवका कोष भरे और एक दिन चाँदपर हँसिये-हथौड़ेका निशान गाड़ दे ? स्पुतनिकमे बैठकर लगभग हर पौने दो घण्टे बाद सारी दुनियाका आरपार चक्कर लगाते कम-से-कम तुम तो यह देख सकते हो कि रूसी हत्यारोने ऐसे-ऐसे घातक रॉकेट बना लिये है जो मॉस्कोसे छूटे तो न्यूयॉर्ककी खबर लायें ! मौतके इन सौदा-गरोके हाथमे अपनी जान देकर क्या तुम नाम कमा सकोगे ?"

"इतना बडा सवाल, मेरे दोस्त, इस छोटेसे जानवरसे ? रूसके हत्यारे-पनकी साक्षी क्या सिर्फ इसलिए मुझसे लेना चाहते हो कि मुझे रूसी 'इण्टर-कौण्टीनैण्टल मिसाइल' (अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र) दिखायी दे रहे है ? तुम्हारा सवाल सुनकर ही समझ गया कि तुम अमेरिकन हो । पर मै पूछता हूँ, मेरे बड़े प्यारे दोस्त, कि तुम्हे हत्याकी साक्षी लेनी है तो हिरो-शिमा क्यों नही जाते ? नागासाकी क्यों नही जाते ? मै रूसमे जन्मा हूँ तो रूसकी बातें कहूँगा ही । कुत्ता जो हूँ—स्वामीभक्त, आज्ञाकारी । मगर बात इतनी ही नही है । तुम्हारे ईसामसीह गवाह है, तुमने पहला ऐटॅम बम छोडकर दुनियाको चकित किया है । ध्वंसके ब्रह्मास्त्रके आविष्कर्त्ता तुम हो । मै बेचारा गरीब कुत्ता, मुझे नामसे क्या लेना-देना ! नाम तो तुम्हारा, कीर्त्ति तो तुम्हारी ! मेरा देश गुनहगार है कि उसने कृत्रिम चॉद आस-मानमे छोड दिया । उसे तुमने 'बेबी मून' कहा; मुझे यह नाम बडा प्यारा

लगा। नन्हे चाँदका ध्यान करता हूँ तो वहाँकी चट्टानोका ध्यान आता है—नन्ही चट्टानें—लिटिल रौक्स····,हाय ! यह मेरे मुँहसे क्या नाम निकल गया ! मेरे अमेरिकन दोस्त, 'लिटिल रौक' तो तुम्हारे देशमे एक शहर है जो तुम्हारे ऐटॅम बमकी तरह 'मशहूर' हो गया है। तुम गोरोके उस शहरमे कुछ काले भी बसते है—अफ्रीकाके लोग ! तुम्हे अपनी स्टैच्यू ऑफ लिबर्टीकी कसम ! बताओ तो तुमने उन कालोके नन्हे मुन्नोंको, प्यारकी उन गुडियाओको, स्कूलमे जानेसे क्यो रोका ? तुमने स्कूल जला दिया कि ये बच्चे तुम्हारे गोरे बच्चोके साथ एक कमरेमे बैठकर पढें नही, खेलके मैदानमे खेले नहीं—ये काले है, 'निग्गर' कहीके, कुत्ते····! कानून, मिलिटरी, गाली-गलौज, बहुत-सी बाते अभी कहनी बाकी है, पर उम्मीद है तुम्हारे सवालका जवाब इतने ही मे मिल गया होगा। मुझे अफसोस है कि यह जवाब तुम्हारे सवालसे बड़ा हो गया।····

जिन्दगीकी साँसे गिनतीकी है। धरतीके आकर्पणको नीचे छोड दिया, पर वहाँके इन्सानका आकर्षण क्यो बेचैन किये हुए है ? ···सुनूँ, शायद यह कोई और सवाल आया····"

"स्पुतनिकमे अकेले बैठकर तुम्हारी क्या यह इच्छा नही होती कि काश कोई साथी होता ? भगवान न करे, अगर कोई दुर्घटना होने लगी तो तुम क्या करोगे ?"

"मित्र, आप भारतीय है क्योकि एक भारतीय ही ऐसा सवाल कर सकता था जिसमे मेरे सुख-दुखकी संवेदना झलके। मेरा साथी तो यह स्पुतनिक है · यह दूसरा कृत्रिम चाँद। आप कहेगे मुझे हर बातमे अपने स्वामियोकी कृपाका ही ध्यान आता है। पर सच मानिए इन लोगोने 'स्पुतनिक' नाम मेरी संवेदनाओको ही ध्यानमे रखकर दिया है। रूसी भाषामे 'स्पुतनिक'का अर्थ है सह-यात्री, हम-सफर। यह उपग्रह और मै एक दूसरेके ही साथी नही है, हम दोनो ही आप सबके सहयात्री है, चाँद-तारोके सहयात्री है।

आज तो नही लगता कि कोई इन्सान मेरा साथ देगा। इस बारेमे मुझे कुछ शिकायत भी नही है, क्योकि मुझे एक बार ऐसा इन्सान साथी मिल चुका है जिसकी मिसाल दुनियामे कही नही मिलेगी। प्रियवर, तुम्हें तो उनका नाम याद होना चाहिए! वे थे स्वयं धर्मराज युधिष्ठिर। महा-भारतके महा-ध्वसके बाद, युद्धके वे पाँचो महाविजेता संसारमे निरीह खड़े-के-खड़े रह गये। दुनिया रहनेकी जगह नही रह गयी थी; युधिष्ठिर चारो भाइयों और द्रौपदीको लेकर हिमालयकी राह स्वर्गकी ऊँचाइयोकी ओर बढ़ चले। तुम्हे तो सब किस्सा मालूम ही है। एक-एक करके पाँचों साथी बर्फमे गल-गलकर मर गये। उदास होकर युधिष्ठिर वही बैठकर समाप्त हो जाना चाहते थे कि नजर पड़ी एक मै भी हूँ जो पीछे-पीछे चला आ रहा हूँ—मै, यानी मेरी जातिके एक बुजुर्ग!

मुझे लेकर युधिष्ठिर आगे बढे, कुछ हिम्मत आयी। पर स्वर्गमे कुत्तेको कौन जाने देता? यमराजने कहा, कुत्ता छोड़ दो, स्वर्ग सामने है, बढ चलो। सोचता हूँ तो गद्गद हो जाता हूँ। युधिष्ठिरने कहा: अगर मेरे साथी इस कुत्तेको स्वर्गमे प्रवेशका अधिकार नहीं तो वह स्वर्ग मेरे लिए त्याज्य है! और वह कुत्ता स्वयं धर्मराज ही तो थे! इससे बड़ा गौरव मुझे क्या मिलेगा!

स्पुतनिकको व्योम-मण्डलमे चक्कर लगाते आज ७ दिन हो गये है। स्पुतनिकके सिरजनहारोने हिसाब लगा लिया है कि स्पुतनिक अन्तरिक्षमे ही कब कैसे विलीन होगा। योजना है कि मुझे पृथ्वीपर उतारा जायेगा। मेरे प्राणोंकी रक्षाका पूरा प्रबन्ध है। पर मेरे प्राण जिस सिरजनहारके हाथमे है उनकी इच्छा और योजनाका किसीको क्या पता? जिस दिन पिजरेकी ऑक्सीजन समाप्त हो जायेगी, मेरी इह-लीला भी समाप्त हो जायेगी। नीचे उतर सका तो मेरे इन्सान दोस्तो, तुमसे मिलूँगा! तुम मुझे देखकर अचरज करोगे, मुझे प्यार करोगे! और, अगर नीचे न उतर सका तो याद रखना कि दुनियामे एक ऐसा भी कुत्ता हुआ था जिसने

एक विलकुल ही नये युगके निर्माणमे एक छोटी-सी कुर्वानी की थी कि चाँद-सूरजके देशमे उड़नेवाले इन्सानकी कायाको कष्ट न हो, वह दुर्घटनाका शिकार न हो जाये।

कहते है स्वर्ग ऊपरकी ओर ही है; पर यह भी हो सकता है कि उस ओर नरक वन जाये। दोस्तो, यह तुम्हारे हाथमे है कि तुम उसे क्या बनाते हो!

साक्षी रहे कि एक कुत्तेने प्राणोकी वलि देकर इन्सानको चेतावनी दी थी!

नवम्बर, १९५७

बापूके वारिसोंके नाम

जब गाँधी-स्मारक-निधिकी ओरसे मेरे मित्रको न माँगनेपर भी कोई अनुदान या सहायता न मिली, तब वह 'रिसर्च-प्रौजेक्ट' (अन्वेषण योजना) उन्होने अपनी ही इच्छा-शक्तिके बलपर चालू कर दिया। न उत्साहकी कमी थी, न निर्माण-शक्तिका अभाव। देखते-देखते एक बे-तरतीब पोथा तैयार हो गया। प्रकाशनकी सुविधा मिले तो वे इस सारे ग्रन्थको उसी रूपमे छपवा दें। किन्तु न मालूम वह दिन कब आये इसलिए, तबतक, उस सामग्रीके कुछ अंशोंको जिन्हे मै अपने मित्रकी सहायताके बावजूद तरतीबमे ला सका हूँ, अपने पाठकोकी जानकारीके लिए यहाँ दे रहा हूँ। मित्रने समूची सामग्रीको रिसर्चका रूप देनेके लिए अपने ग्रन्थको

नाम दिया है 'भारतीय राजनीतिके सम-सामयिक साहित्यका अन्वेषण।' मैने उसमेसे जो अंश छाँटे है, उन्हे आसानीसे इस लेखके प्रारम्भमे दिये गये शीर्षकके अन्तर्गत खपाया जा सकता है। इस शीर्षकसे सम्बन्धित सारी सामग्री एक लेखमे देना असम्भव है। देशकी अजानी प्रतिभाओने इस साहित्यका किन-किन शैलियोमे निर्माण किया है, इसका भी नमूना पाठकोको मिल जाये इसलिए थोडे-थोडे अंश सभी प्रकारकी रचनाओमेसे ज्योकेत्यो लिये गये है।

* * *

अभिनन्दन-पत्र

वन्दनीय राष्ट्र-सूर्यकी ज्वलन्त किरणो !

हम भोगाँव निवासियोका यह परम सौभाग्य है कि काग्रेस-राजनैतिक-शिविरका आयोजन हमारे इस इतिहास-प्रसिद्ध नगरमे आपने चलाया, और आपके चरणोकी रजसे हमारा नगर पवित्र हुआ। आपकी आत्माकी ज्योतिसे हमारे हृदय-कमल खिल गये है और तिमिर-प्रेमी काग्रेस-विरोधी उलूक पलायमान हो गये है। धन्य है आपकी महिमा !

अहिंसाके वज्र-सेनानियो !

राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी हमे अहिसाका जो अस्त्र दे गये है उसके परिचालनमे आप सब सिद्ध-हस्त है। यह शिविर हमारे प्रान्तमे आप जैसे सेनानी उत्पन्न करेगा जो अहिसाके अस्त्रसे सब विरोधोको, भुखमरीको, वेकारीको छिन्न-भिन्न कर देगे और तव यह भारत विश्वके कोने-कोनेमे अहिसाका डंका पीटकर सारे राष्ट्रोंका नेता बन जायेगा।

राजनीति-निपुण नेताओ !

काग्रेस-राज्यके कारण जो पंचवर्षीय योजनाएँ देशमे लागू हुई है, उनसे हमारा देश वहुत आगे बढ गया है। काग्रेस-राज्यके कारण ही

लोगोको सुख-सुविधाएँ जुटानेका महायज्ञ प्रारम्भ हुआ है ....भारत-की विदेश-नीतिने सारे ससारके राजनीतिज्ञोको चकित कर दिया हैं। अब पंचशीलका जो नारा हमारे प्रधान मन्त्री जवाहरलाल नेहरूने जोर-जोरसे लगाया है उसकी गूँज ब्रह्माण्डमे फैल गयी है। एशिया, अफ्रीका, अमरीका, यूरोप, चीन, जापान सभी देश-विदेश आज भारतकी अहिसा नीतिकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे है और कपिल, कणाद, बुद्ध, महावीर, शिवाजी, राणा प्रताप, गुरु नानक, गान्धी, जवाहर, सरोजिनी नायडू और चन्दशेखर आजादके इस देशको अपना गुरु मानकर हमे पूजते हैं। हमारे वेदोमे कहा गया है 'कृण्वन्तम् विश्वम् आर्यम्'—सारे संसारमे आर्य-संस्कृतिका झण्डा ऊँचा उठा दो !

हम भोगाँव नगर-निवासियोकी प्रार्थना है कि हमे चुंगीसे मुक्त किया जाये ताकि व्यापारमे वृद्धि हो और प्रतिदिन बढते हुए तस्कर व्यापारको अवसर न मिले। नलकूप और जलकूपोमे पानीका अभाव रहता है, उसे योजनाके अन्तर्गत पूरा किया जाये। सरकारी अस्पतालमे मिक्सचरके रूपमे जो गन्दापानी मिलता है उससे रोगके कीटाणु बढते है, उन्हे नष्ट किया जाये। मण्डीका कूड़ा सप्ताहमे एक दिनके बजाय दो दिन उठाया जाया करे ..(आदि-आदि)

* * *

समर्पण

अजमेरसे एक पुस्तक छपी 'बापूके ये वारिस'। उसका समर्पण इस प्रकार है :—

उन पुराने साथियोंकी यादमें

- **जो फाँसीके तख़्तेपर चढ़ गये, इसलिए कि बापूके ये वारिस तख़्त-पर बैठें !**

○ जो जेलकी दमघोट काल-कोठरियोंमें मर गये, इसलिए कि बापूके ये वारिस विशाल राजमहलोंमें निवास करें !

○ जो टी० बी०, दमा और .खूनकी कै करते-करते ख़त्म हो गये, इसलिए कि बापूके ये वारिस बड़े ओहदोंपर बैठकर दूध-मलाई खायें !

○ जो जिन्दा रह गये, इसलिए कि बापूके इन पदारूढ़ वारिसोंको सलाम झुकायें !

या

लावारिसोंकी तरह मर जायें !!!

* * *

खुली चिट्ठी

बापूके वारिसोंके नाम

[भारत-मित्रके फटे साप्ताहिक अंकसे]

मित्रो,

मै आपमे-से ही एक हूँ। राजनीतिमे रहता हूँ, केन्द्रीय शासनका महत्त्वपूर्ण पुर्जा हूँ, एक प्रादेशिक कांग्रेस समितिका अध्यक्ष हूँ। मै जो कहूँगा वह अनुभवके आधारपर और भुक्त-भोगीके रूपमे। मेरी बात सुनो।

गान्धीने हमे बनाया। हम उसके धर्म-पुत्र है। वह हमारे हाथोमे स्वतन्त्र भारतका इतना बडा साम्राज्य छोड़कर चला गया—इतना बडा जो भारतीय इतिहासके पृष्ठोमे अद्वितीय है। जिस रात शखो और शहनाइयो-के गूँजते स्वरोके बीच हम राजसिंहासनपर बैठे, उस रात वह बूढा तपस्वी कहाँ था, क्या कर रहा था, क्या सोच रहा था ! ख़ैर, छोड़ो इस बातको।

५

गान्धीने हमे सत्य दिया, सत्यका आग्रह दिया। और, हमने अपने राज-चिह्नपर यह मन्त्र अंकित कर लिया : **'सत्यमेव जयते'**। अर्थात् केवल सत्यकी ही जय होती है। होती होगी ! देखो, मेरी सलाह है : आज उस मन्त्रको इस रूपमे लिखो, **'यज्जयते तदेव सत्यम्'**—जिसकी विजय हो, सत्य वही है।

उदाहरण दूँ :—

- **यदि सत्यकी विजय होती तो उस मूक सेवक, प्रतिभाशाली युवकको कांग्रेसका टिकट मिलता जिसकी निःस्वार्थ सेवा-भावनाकी सब तारीफ़ करते है। विजय जिनकी हुई, वे हैं वोट खरीदनेवाले, संकुचित जातीय भावनाओंके सहारे दल बनानेवाले, और तिकड़मी। सत्य सेवा नहीं, तिकड़म है !**
- **यदि सत्यकी विजय होती तो इतने अधिकारियोंके, इतने मन्त्रियोंके, इतने कांग्रेस अध्यक्षोंके निजी भवन जादूकी छड़ीसे न खड़े हो जाते। सत्य हैं पद और अधिकार ! असत्य है त्याग !**
- **यदि सत्यकी विजय होती तो योग्यता पुरस्कृत होती। किन्तु दाव-पेचसे विजयी होकर जो जज बने, जो प्रिन्सिपल बने, जो हेड-क्लर्क बने, जो एक्जामिनर बने, जो संस्थाके कोषाध्यक्ष बने, सत्य है केवल उनके दाव-पेंच, चापलूसी, भेद-नीति ! असत्य है जनता, असत्य है निष्काम-नीति !**

दोस्तो ! शक्तिका मद तुम जान गये, अधिकारका नशा तुम्हे चढ गया। तुम गद्दी छोडना नही चाहते, गद्दीके लिए सेवा तुम करना नहीं चाहते।

देशको टुकड़ों-टुकड़ोमे बाँटनेके लिए तुम तैयार हो, इसलिए कि सत्ता-की चरम सीमा तुम भोगो; इसलिए कि केन्द्रीय अनुशासनसे तुम मुक्त हो जाओ, प्रत्येक प्रदेश और प्रान्त एक स्वतन्त्र और सार्वभौम सत्ता बन

जाये। भाषाके नारेके पीछे, हिन्दीके विरोधके पीछे यही स्वप्न है। नारा प्रचारित है कि हिन्दी भाषा बहुत पिछड़ी है, हिन्दी साहित्यमे कुछ नही है, देशके दूसरे साहित्य हिन्दीसे बहुत आगे बढ़े हुए है। कौन है वे लोग जो यह नारा बुलन्द करते है? वे जो हिन्दी पढ़-लिख नही सकते, जिन्होने शायद सारे जीवनमे हिन्दीकी एक भी पुस्तक आदिसे अन्ततक नही पढी।

हम गाँधीके वारिस यह क्यो नही देख पाते कि हवा उखड़ गयी है, और अगर हम आज भी नही सम्हले, तो हम तो डूबेगे ही, देश भी डाँवाडोल हो जायगा; क्योकि काग्रेसका विरोध तो बहुत है, लेकिन काग्रेस-की अपेक्षा बेहतर शासन करनेकी क्षमता किसी भी अन्य राजनैतिक दलमे नही। नौजवानोकी भीड़ कॉलेजोसे निकलकर दिग्भ्रान्त भटक रही है। रोजी नही मिलती। दूसरी ओर देशकी महान योजनाओको सफलतासे चलानेवाले अधिकारी और कर्मचारी नही मिलते। दफ्तरो और कचहरियो-मे काम निकालनेके चालू साधन है, रिश्वत या खुशामद। सब जानते है, सब देखते है, पर कोई कुछ कर नही सकता, क्योकि सभी उसी चक्रके अंग है—प्रत्यक्ष या परोक्ष!

साथियो! सुना है, तुमने हम बापूके वारिसोकी बात करते? हमे मन्त्रालयोसे सुनिए, कॉफी हाउसमे सुनिए, पंचायतघरोमे सुनिए, पानकी दूकानपर सुनिए—और फिर मुकाबला कीजिए हमारे उन भाषणोसे जो हम पब्लिक प्लेटफार्मसे देते है। 'सत्यके प्रयोग अथवा आत्म-कथा' की शपथ, 'नव-जीवन' और 'हरिजन' की शपथ, 'अनासक्ति योग' की शपथ, 'प्रार्थना प्रवचन' की शपथ—खुद गाँधीके नामकी शपथ, बोलो, तुम्हारे मन, वचन और कार्योमे गाँधीके सत्य और अहिसाकी कही परछाई भी है? जब मेरेमे नही जो आत्म-निरीक्षणको जीवन-चर्याका अग मानता है, तो तुम्हारेमे कहाँ?

कहो, सीधी बात कहो, कि राजनीतिको हम राजनीतिकी तरह खेलते

है—जैसा कि सारी दुनियामे होता है। मत कहो कि धर्म, सत्य और अहिसा हमारी राजनीतिके अंग है और हम साधनोंकी पवित्रताको उतना ही महत्त्व देते है जितना साध्यकी उच्चताको !

२६ जनवरी और १५ अगस्त क्या है ? एक तमाशा—सरकारी तमाशा ! इससे ज्यादा कुछ नही। रूसमे देखो, अमरीकामे देखो, चीनमे देखो कि अपने राष्ट्रीय त्योहारोके अवसरोपर जनता क्या करती है। वहाँ त्योहार सरकारी नही, जनताके होते है। यहाँ सरकार जनताकी है, त्योहार सरकारके है, जनता भगवानकी है और भगवान पत्थरके है !

अपने और आपके कार्योसे
लज्जित
आपका एक साथी

* * *

नेता-प्रशस्ति ग्रन्थ-माला

पूनाकी किसी 'राष्ट्रीय ख्याति-संवर्धिनी सभा' के एक परिपत्र (सर्क्युलर लैटर) के कुछ अंश :

मान्यवर,

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारी सभाने राष्ट्रके उन प्रमुख नेताओकी जीवनी 'प्रशस्ति ग्रन्थमाला' के अन्तर्गत प्रकाशित करनेका बीड़ा उठाया है जो बापूके आदर्शोंके नामपर आज देशके सेवाकार्योंमे लगे हुए है —जैसे केन्द्रीय सरकारके मन्त्री, राज्योंके मन्त्री, लोकसभा और राज्यसभाके सदस्य, विभिन्न राज्योंकी विधान सभाओके सदस्य, कांग्रेस कमेटियोके अध्यक्ष, मन्त्री, सदस्य, पंचायत घरोके सदस्य, भारत-सेवक

समाजके सदस्य, काग्रेसकी यूथ कमेटीके सदस्य आदि-आदि—सभी प्रमुख नेतागण !

देशके केन्द्रीय मन्त्रालयोसे और राज्योके शिक्षा-विभागोसे हमे आश्वासन मिला है कि हमारी ग्रन्थमालाकी पुस्तके सभी सरकारी पुस्तकालयोके लिए और ग्राम-पचायतोके लिए खरीदी जायेगी। एक-एक ग्रन्थकी पाँच-पाँच, सात-सात हजार प्रतियाँ भी छापी जा सकती है। सरकारोके प्रचार विभाग स्वय ऐसी पुस्तके छापना चाहते थे किन्तु उन्हे सकोच हुआ, इसलिए इस सभाको इस कामके लिए उत्साहित किया गया है।

आप और आपके जो मित्र देशके सेवाकार्योमे दिलचस्पी लेते है, उनके लिए यह अपूर्व अवसर है। प्रत्येक जीवनीकी पृष्ठ सख्या चरित्र-नायककी इच्छानुसार रहेगी। १०० पृष्ठोकी जीवनीके लिए १०० रुपये, २०० पृष्ठोकी जीवनीके लिए १७५ रुपये, ३०० पृष्ठोकी जीवनीके लिए २५० रुपये पेशगी लिये जायेगे। इससे ऊपरके पृष्ठोके लिए रियायती दर निश्चित की गयी है। जितने फोटो ब्लॉक देना चाहे, दे। उनके लिए मिनिमम साइजके फी ब्लॉकके लिए ५ रुपयेके हिसाबसे भिजवा दे। फैमिली ग्रुपके लिए २५ रुपये अतिरिक्त।

सारे केन्द्रीय मन्त्रियो और राज्य मन्त्रियोके जीवन-चरित्रोकी सामग्री विपुल फोटो सामग्रीके साथ राज्यके प्रकाशन विभागोकी ओरसे हमारे पास पहुँच चुकी है। छपाई शुरू हो गयी है। पेशगी रकम आ चुकी है।

सभाने हिन्दीके १५ लेखकोकी सेवाएँ प्राप्त की है जो चरित्र-नायकोकी जीवनीको उपर्युक्त तालिकाके अनुसार चाहे जितना विस्तार दे सकते है। आपको स्वयं कुछ कष्ट न करना पडेगा। आप केवल नीचे लिखी सूचना भेज दे :—

१. आपका नाम, २ माता-पिताका नाम, ३. पत्नीका नाम, ४. सन्तानका नाम, ५. परिवारके सदस्योके नाम, ६. सबका अलग-अलग

फोटो और एक ग्रुप फोटो, ७. आपकी शिक्षा (यदि हो तो), ८. वर्तमान पद, पता, ९. देश-सेवाके कार्योका दिग्दर्शन, यथा :—

१. सत्याग्रह आन्दोलनमें भाग लिया

(दर्शकके रूपमें भी हो तो काम चल जायेगा ।)

२. लाठी खाई, जेल गये (लाठी खाते और जेल जाते देखा हो तो भी ठीक ।)

३. वालिन्टियर बने; तिलक, गोखले, एनीबेसेन्ट, देशबन्धु, दास, नेताजी सुभाष बोस, गान्धीजी, पटेल, नेहरू आदिके सम्पर्कमें आये, उनसे बातें कीं, पत्र-व्यवहार हुआ, उनके भाषण सुने, उनके जलसोंमें भाग लिया या उन्हें देखा—कैसे लगे, आदि आदि । आपके प्रिय नारे क्या है । केवल संकेत दीजिए, डिटेल बना लिये जायेंगे । मृत नेताओंके साथ सम्पर्क विस्तारसे दिये जायेंगे । चर्खा कातना, हरिजन सेवा करना, दीन-दुखियोंकी सहायता आदिके बारेमें लिखना अनावश्यक है । इस तरहके पचासों सेवा-कार्योके बारेमें अच्छीसे-अच्छी सामग्री अलग-अलग ढंगसे बना ली गयी है। वह पेशगी रकमके आधारपर सजा दी जायेगी ।

ऐसा अवसर फिर नही मिलेगा । आपका नाम अमर हो जायेगा । आज ही पेशगी रुपया भेज दे ।

'नेता-प्रशस्ति ग्रन्थमाला' राष्ट्रभाषामे निकलेगी । किन्तु यदि आप हिन्दीके विरोधमे विचार रखते है, तो सूचित करे; हिन्दीके विरोधमे जो उक्तियाँ हमारे हिन्दी-लेखकोने जुटायी हैं, वे आपकी ओरसे सक्षेपमे लिख दी जायेगी । ये पुस्तके प्रान्तीय भाषाओंमे भी अनूदित होगी, उस समय इन्ही उक्तियोको विस्तारसे लिख दिया जायेगा । अभिप्राय यह है कि इस पुस्तकसे आपके राजनैतिक चान्स बढ जायेंगे। (आदि, आदि)

*　　　*　　　*

काव्य

राष्ट्र पताका लिये वढ़े हम बापूके सेनानी,
प्राण जायें तो जायें, भावना आज़ादीकी ठानी !
हिला दिया साम्राज्य, झुक गये सारे राजा-रानी,
बापूके वीरोंकी दिश-दिश गूंजी अकथ कहानी !

(अप्रकाशित महाकाव्यसे)

एक नेताकी प्राइवेट साहित्यिक रचना

(प्राइवेट पत्रसे)

- गान्धीके नामको बढ़ाओ,
  लुटती द्रोपदीके चीरकी तरह !
- गान्धीके नामको चलाओ,
  कम दाममें प्राप्त क़ीमती विदेशी सिक्केकी तरह !
- गान्धीके नामको घुमाओ,
  कुम्हारके चाकको तरह !
- गान्धीके नामको फुलाओ,
  फूंकभरे गुब्बारेकी तरह !
- गान्धीके नामको उठाओ,
  बाजीगरके बाँसपर चढ़े जमूरेकी तरह !
- ग़र्ज़ यह कि गान्धीके नामको बढ़ाओ, चलाओ,
  घुमाओ, फुलाओ, उठाओ—
  अपने हितके लिए ! ! !

*   *   *

नयो कविता

तुम,
तुम, ओ देशके पण्डो !
जो बापूके नामको
चन्दनका मूठा मान,
रगड़-रगड़ लेप बनाते हो
कि सबके माथोंको
तिलकके चिह्नोंसे पोत दो
और फिर उन्हें बैलटका बैल बना
जोड़ीमें जोत दो !
यह सब अब चलनेका नहीं,
पानीका दिया अब जलनेका नहीं ! !

(सम्पादकों-द्वारा बारबार लौटायी गयी रचना)

जुलाई, १९५८

डियर आइक !

डियर आइक,*

बहुत सोच-विचारके बाद यह खत तुम्हे लिखने बैठा हूँ। यो साधारण तौरपर अमरीकामे किसीको भी कुछ कहने-सुननेमे सोच-विचारकी आवश्यकता नही होती क्योकि हम अपने देशके गौरवकी घोषणा यह कहकर करते है : "यह अमरीका है। यहाँके अदनासे अदना नागरिकको भी यह स्वतन्त्रता है कि वह सडकपर खड़ा होकर, पाससे गुज़रते हुए, प्रेज़ीडेण्टके मुँहपर बरमला कह दे, "यू आर ए डैम फूल"—कोई उसका कुछ भी न

---

* प्रेज़ीडेण्ट आइज़नहावरके नाम एक अमेरिकनका पत्र।

बिगाड पायेगा।" मै व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी इन्हीं परम्पराओमे पला हूँ, इसलिए जो कहना चाहता हूँ बिना सोच-विचारके, बिना इस भूमिकाके भी कह सकता था, किन्तु देखता हूँ तुम बूढे हो गये—डाक्टर हर रोज तुम्हारे दिलकी धडकने गिनता है और भवितव्यका अन्दाज लगाता है। यह प्रेजीडेण्टशिप यो भी साल-दो-सालका खेल है। फिर इस चलाचलीके वक्तमे क्यो तुम्हे कुछ ऐसा लिखूँ जिसे पढ़कर तुम परेशान हो? पर, जब ख्याल आता है कि तुम हर दिलके दौरेके बाद जोर देकर कहते हो, 'मैं भला चंगा हूँ और अपने काममे मुस्तैद हूँ', तो फिर मेरा वह सकोच काफूर हो जाता है।

तुमने एक बार अपने वोट देनेवालोको एक किस्सा सुनाया था। कहा था, "देहातमे एक बूढ़ा रहता था। उसकी गाय इतना दूध देती थी कि बाल्टी भर जाती थी। वह बूढा अपनी गायसे बहुत सन्तुष्ट था। संयोगकी बात, उसे कुछ ऐसी ज़रूरत आ पड़ी कि रुपया उघानेके लिए अपनी गाय बेचनी पड़ी। खरीदारने पूछा, गाय दूध कितना देती है? बूढेने दूधकी नाप-तोल कभी की नही थी। बोला, 'गाय बहुत अच्छा दूध देती है; बहुत सारा!' खरीदारको इससे सन्तोष नही हुआ। वह जानना चाहता था कि आखिर दूधकी मिकदार कितनी हो सकती है। जब बहुत सवाल-जवाब हो चुके तो बूढ़ेने झल्लाकर कहा—'महाशय, यह तो मै कभी भी न बता सकूँगा कि मेरी गाय जो दूध देती है वह वजनमे कितना होता है, लेकिन हाँ, यह मै विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी गाय बहुत ईमानदार है और जितना भी दूध उसके थनोमे होता है, सब-का-सब दे देती है।" किस्सा सुनानेके बाद तुमने कहा था, "दोस्तो, मै आपकी वैसी ही गाय हूँ। मै कितना क्या दे सकूँगा, कह नही सकता। पर, हाँ यह विश्वास दिलाता हूँ कि मेरी जो भी क्षमताएँ और शक्तियाँ है, आपकी सेवामे समर्पित है, समर्पणमे कमी नही करूँगा।" तुम्हारी यह बात मुझे बहुत प्यारी लगी थी, और मुझे ख़ुशी हुई थी कि तुम चुनावमे सफल हुए, प्रेजीडैण्ट बने।

मैं यह भी मानता हूँ कि तुमने अपनी योग्यताके अनुसार राष्ट्रकी सेवामें कसर नही रखी। गायका कसूर नही, कसूर है खरीदारकी परखका, उसकी बडी बाल्टीका और उस मोटी रकमका जो अपना पूरा मुआवजा चाहती है। हैरान हूँ कि भूमिका ही बाँधे चला जा रहा हूँ और असली बात तक नही आने पाता। फ्रायडने ठीक ही कहा है—'मन अप्रियको टालनेके लिए तरह-तरहके बहाने खोजता है'। पर, अब टालूँगा नही, सुनो।

क्या यह ठीक है कि आज संसारमे दो ही बडे दल है—एक लोकतन्त्र या डेमोक्रेसीका हिमायती और दूसरा तानाशाही या डिक्टेटरशिपका समर्थक? क्या यह ठीक है कि हमारा अमरीका डेमोक्रेसीका समर्थक है? क्या यह ठीक है कि हमने दो महायुद्ध इसलिए लडे और लाखो-करोड़ो नौजवानोका रक्त इसलिए बहाया कि हम जनतन्त्रवादको, डेमोक्रेसीको, तानाशाहीके बूटके तले न कुचला जाने दे? अगर यह ठीक है, डियर आइक, तो मै जानना चाहूँगा कि जनतन्त्रवादके समर्थनके लिए तुम्हारे कार्यकालमे अमरीकाने क्या-क्या किया? लोक-तन्त्र और डेमोक्रेसीसे भी बड़ा उद्देश्य मानवके सामने है—हिंसा और विद्वेष भावनाका त्याग, युद्धके वातावरणका दमन, शान्तिकी रक्षा। इस उद्देश्यके लिए तुमने, तुम्हारे शासनने क्या किया?

संसारके राजनैतिक चक्रको अपने व्यक्तित्वकी धुरीपर संचालित करने-वाले व्यक्तिसे—हाँ, तुमसे—अगर मै यह पूछूँ कि पिछले एक वर्षमे, सन् १९५८ मे, जनताके सीनेपर, लोकतन्त्रात्मक भावनाके वक्षपर, भारी-भारी बूट रखे कितने फौजी तानाशाह आ खडे हुए है और कितने राष्ट्रोने फौजी तानाशाहीके सामने इस एक सालमे घुटने टेक दिये है, तो क्या तुम गिनती गिनवा सकोगे? जरूर गिनवा सकोगे; सात राष्ट्र—(१) सीरिया, (२) इराक, (३) लेबनन, (४) बर्मा, (५) थाइलैण्ड, (६) पाकिस्तान, (७) सूडान। इसके अतिरिक्त इण्डोनेसियामे फ़ौजी सत्ता सिंहासन सम्भालने-वाली है, और ईरानके शाहकी सत्ता वहाँके फौजी कमाण्डर-इन-चीफ़

सम्भाले हुए है। जनतन्त्रके सबसे बड़े समर्थक राष्ट्र अमरीकासे, अमरीका-से क्यो, उसके सबसे बड़े सत्ताधारी 'आइक' से यदि मैं पूछूँ कि उसने इस फौजी तानाशाहीसे लोकतन्त्रको बचानेके लिए क्या-क्या उपाय काममे लिये तो क्या यह सवाल बेजा होगा ? क्या यह ठीक नहीं है कि खुद अमरीकाने, यानी तुमने और तुम्हारे मिस्टर डलेसने इन अनेक राष्ट्रोमे फौजी सत्ताकी स्थापनामे मदद दी ? क्या इससे जनतन्त्रकी हत्या नही हुई ? एक सीधा सवाल पूछता हूँ। पाकिस्तान तो हमलोगोका सहयोगी है। हमने करोड़ो डॉलर पाकिस्तानको दिये। यूनाइटेड नेशन्समे हमने पाकिस्तानका पक्ष लिया। कश्मीरके मामलेमे हमारी हमदर्दी पाकिस्तानके साथ है। हमने उसे हवाई जहाज दिये, तोपें दी, टैंक दिये, गोले दिये, नहरे और बाँध बाँधनेके लिए रुपया दिया, अनाज दिया, सहयोग दिया, तो क्या सचमुच वहाँ हमारी इच्छाके विरुद्ध फौजी सत्ता कायम हो गयी ? मैं क्या जवाब दूँ अपने उस हिन्दुस्तानी दोस्तको जिसने उस रात क्लबमे मुझसे पूछ लिया : 'एशियामे लोकतन्त्रका झण्डा ऊँचा रखनेवाले भारतसे अमरीकाको ज्यादा हमदर्दी है, या जनताकी नाकमे नकेल डालकर फौजी राज चलानेवाले अयूबखाँसे ?

अब हम लोगोको इस बातका यकीन हो गया है, मिस्टर प्रेजीडेण्ट, कि हमारे देशकी दिलचस्पी डेमोक्रेसीमे नही डिप्लोमेसीमे है। कोई भी राज हो, उसका कोई कैसा भी तरीक़ा हो, हमारा अमरीका उसका दोस्त है जो रूसके खिलाफ़ है। अगर कोई हमारा दोस्त है, मगर वह रूसके खिलाफ नही, तो हम उसे दोस्त न मानेंगे, न साथी। दक्षिण कोरियाका शासक सिग्मन री हमारा दोस्त है, क्योकि वह रूसके खिलाफ है। क्या हुआ अगर उसने पार्लमेंटसे ८० आदमियोंको मार-पीटकर इसलिए निकलवा दिया कि वे विरोधी दलके थे और ५ दिन तक एक प्रस्तावका विरोध करते रहे। च्यागकाई शेक हमारा दोस्त है और उसका छोटा-सा द्वीप ही असली चीन है, क्योकि वह उस बड़े और असली चीन-

के खिलाफ है जिसका माओत्से तुग प्रेजीडेट है और जो साम्यवादी रूस-के साथ है। इतना बडा अन्धेर कही और है कि चीन जैसे बडे देशके गणराज्यकी हम सत्ता ही नही मानते और उसे राष्ट्रसघका सदस्य होनेका हक भी नही देना चाहते। दोस्त, कयामतका दिन इस दुनियामे भी आ सकता है और यह भी हो सकता है कि इन्सानको दुनियाकी अदालतमे अपने कारनामोका जवाब देना ही पड जाये।

मै मानता हूँ कि इन्सानकी आजादी दुनियाकी सबसे बडी नेमत है। मै मानता हूँ कि जिस शासनमे आदमीको खुलकर बात कहनेका अधिकार न हो, वह शासन निन्दनीय है। सिद्धान्तकी बातमे मुझमे और तुममे कोई मत-भेद नही। पर यह तो बताइए, मिस्टर प्रेजीडेट, कि रूसका शासन हर दिशामे इतनी व्यापक उन्नति कैसे करता चला जा रहा है? पाँच-सात साल पहले तक हमारे 'डाइजेस्ट', हमारे 'टाइम', हमारे 'लाइफ' मैगजीन दुनिया-भरके आजाद लोगोके मनमे यह बात अच्छी तरह बैठा चुके थे कि रूस अपने प्राणोकी रक्षा कर सके तो बहुत है। ज्ञान-विज्ञानमे वह अमेरिकासे बहुत पीछे है। लेकिन एक दिन उसने स्पूतनिक आकाशमे उड़ा दिया तो सदियोके स्वप्न टूट गये और महत्ताके दावेदारोके सिर झुक गये। खैर, विज्ञानकी बात है। तानाशाहोंने विज्ञानपर ज़ोर दिया और कोडेकी फटकारसे स्पूतनिक बनवा लिया। हमने एटलेस बना दिया, हमने एक नया उपग्रह बनाकर आसमानमे छोड़ दिया और, मिस्टर प्रेजीडैट, दुनिया अचम्भेसे दाँत तले उँगली दबाकर रह गयी जब इन्सानकी पहली वाणी, जो आपकी वाणी थी, दूरके उपग्रहमे पहुँची, वहाँसे लौटी और फिर इन्सानकी धरतीपर सुन ली गयी। हमारे अखबार भरे पडे है इस घटनाके गुणगानसे! पर तालियोकी गडगड़ाहट-के बीच नये वर्षके उपहार-स्वरूप २ जनवरी १९५९ को बहुत-बहुत-ऊँची घोषणा सुनायी दी कि रूसने नया उपग्रह नही, दसवाँ ग्रह 'ल्यूनिक' आकाशमे प्रवर्तित कर दिया है जो चन्द्रमाके सहयात्री स्पूतनिक-

को पीछे छोड़ सूर्यके पार्श्वमे ९ करोड़ मीलकी यात्रापर निकल गया है और ७२००० मील प्रति घण्टेकी रफ़्तारसे घूमेगा। ल्यूनिककी नोकपर इन्सानके हाथका बनाया झण्डा और इन्सानके हाथके लिखे अक्षर सूर्यलोकमे घूम रहे है····रूसी अक्षरोमे रूसी गणतन्त्रका नाम और सन् १९५९ !

हमारे पत्रोने हमे हमेशा यही बताया कि रूसमे लोगोको भर पेट खाना नहीं मिलता, कपड़ा नही मिलता,और जीवनकी सुख-सुविधाओका तो दर्शन ही दुर्लभ है। बात बहुत हद तक ठीक थी। जो लोग रूसकी यात्रासे लौटे उन्होने बताया कि अच्छी कमीज, अच्छा कोट, अच्छा जूता, सिगरेट और मक्खनकी मोटी टिकिया रूसमे न्यामते मानी जाती है। हमे बड़ा सन्तोष था कि अमरीकाका लोकतन्त्र लोगोंको व्यक्तिगत स्वतन्त्रता ही नही देता उन्हे उपभोगकी सामग्रियोसे भी वंचित नही करता। जो जितना श्रम करे, उतना ही पैसा कमाये और उतनी ही सुख-सुविधाओको जुटाये। लोकतन्त्रका बहुत बड़ा आकर्षण था यह। एशिया और अफ्रीकाके पिछड़े व अभावग्रस्त देशोके लिए अमरीकाकी समृद्धि, उस समृद्धिको प्राप्त करनेके तरीके बहुत बड़ा आकर्षण प्रस्तुत करते थे। हमारे प्रोपेगैण्डामे बहुत बड़ा बल था। लेकिन अफसोस आज उस प्रचारका प्रभाव समाप्त हो गया। हमारी पद्धतिपर शकाकी उँगलियाँ उठने लगी क्योकि हमने स्वयं ही भोगना जाना या फिर बदलेमे लोगोका आत्मसम्मान लेकर दान देना जाना। अब ये पिछडे देश देख रहे है कि पूँजीवाद आकर्षणकी वस्तु भले ही हो, कामकी चीज है समाजवाद, साम्यवाद। रूसने लोहा बनाया, इस्पात बनाया, मशीने बनायी, बाँध बनाये, लोगोंको भर पेट खाना दिया। भोगकी चीजे नही दी, पर राष्ट्रको आत्मसम्मान दिया—स्पूतनिक और ल्यूनिक बनाकर। एशिया-अफ्रीकाके देशोकी नब्ज रूसके अधिनायकोने पहचानी और ख्रुश्चेव-ने घोषणा की कि भूखे देशोमे अन्तिम विजय साम्यवादकी होगी क्योकि "आदमीके सामने सबसे बडा प्रमाण है, उसका पेट।" साम्यवादियोके

२१ के वार्षिक अधिवेशनमे ख्रुश्चेवने घोषणा की है और जनताको आश्वासन दिया है कि अव अगली ७ वर्षीय योजनाओमे सवको दूध मिलेगा, मक्खन मिलेगा, मिष्ठान्न मिलेगा, अच्छे-अच्छे वस्त्र मिलेगे और हम अमरीकाको दिखा देगे कि ऊँचे जीवन-स्तरकी दृष्टिसे भी हम, हमारा साम्यवाद, पीछे नही है।

हमे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि रूसी लोग खूब वातचीत करते है, हँसते है, व्यग-विनोद करते है और वातचीतमे हमे पग-पगपर मात देते है। उनका उप-प्रधान मन्त्री मिकोयान अभी-अभी हमारे यहाँ होकर गया है। कैसा खुश मिजाज आदमी है? उसने धनवानोको भी मोहा और जन-साधारणको भी। मज़ा यह कि हमारे राजनैतिक सिद्धान्तोकी खामिया हमारे ही सामने वखान गया। उसे देखकर हमारे आदमी समझ गये कि इसके आदमी किस हड्डीके वने है और क्या कारण है कि एक ही पीढीमे रूस औद्योगिक उन्नतिकी चोटीपर पहुँच गया।

प्रिय आइक, तुमने अपने कार्यकालके ये महत्त्वपूर्ण ६-७ वर्ष किस भ्रममे गँवा दिये? एटलीने टेलीविज़नपर साक्षात् होकर लोगोसे हाल ही मे कहा है: "आइज़नहावर कुछ वहुत वढिया सैनिक नही। मैने उसे समझाया कि राजनीतिके चक्करमे न पड़े, पर वह गलती कर ही बैठा।" वढिया सैनिक भी नही, वढिया राजनीतिज्ञ भी नही, तो फिर हमारे प्यारे दोस्त, तुम क्या हो? एटलीकी यह ज्यादती है। पर, ऐसा न हो कि इतिहास उसका यह दावा सिद्ध कर दे।

देखो, ये आग और तलवारका पुराना खेल छोडो। क्या लाभ यदि नैटो, सियटो और वगदाद पैक्ट कायम रहे, और इन्सानियत मर गयी? लोग इन्सानियतको रोटीके भाव खरीदनेपर तुले हुए है, और तुम, मेरे दोस्त, आँखोपर पट्टी वाँधे वैठे हो।

तुम वूढे हो, तुम्हे दिलके दौरे पड़ते है, साल-दो सालमे तुम वैसे भी सत्ता-हीन हो जाओगे। मै नही चाहता था कि यह सव कहकर तुम्हारे

दिलको दुखाऊँ, लेकिन मेरी लाचारी देखो; मै तुमसे नहीं कहूँ तो किससे कहूँ ? मेरे राष्ट्रके अध्यक्ष तुम हो, इन्सानियत और लोकतन्त्रके हिमायती बननेका दावा तुम करते हो। मैने जो ठीक समझा, कहा। बुरा न मानना।

योर्स सिन्सियरली,
—एक अमेरिकन नागरिक

जनवरी, १९५८

नये वर्षकी नयी डायरियाँ

नये वर्षकी नयी डायरियाँ

अनेक डायरियोंका एक पृष्ठ : १ जनवरी १९६०

[कुछ-कुछ लिखा हुआ : कुछ सोचा हुआ]

लेखककी टिप्पणी

जिनकी डायरियोंमेसे यह पहला पृष्ठ प्राप्त किया गया है (विश्वास रखें पन्ना फाड़ा नही गया है) उन्हे आप जानते है। इसलिए नाम बतानेसे कोई लाभ नही । इन नामोको आपके दूसरे मित्र भी पहचान जायेगे । तब आप उनसे विचारोका आदान-प्रदान कर सकते है । कही असहमति रह जाये तो लेखकको सूचित करे । इन पृष्ठोमे जगह-जगहपर अनेक व्यक्तिगत सन्दर्भ थे। उन्हे काट-छाँट दिया है। इस कारण यदि ये डायरियाँ वैय-

वितक न लगे तो निश्चय ही आपको निराशा होगी। मुझे प्रसन्नता होगी। हो सकता है, आप इन पक्तियोको किसी और इरादेसे पढे, मैने इन्हे किसी और इरादेसे लिखा हो। तब, क्या हमारे इरादे किसी एक स्थानपर जाकर टकरायेगे ? नही। इरादोकी दुनियामे रास्ते ही रास्ते हैं, ठिकाने नही, बशर्ते कि आप 'पडाव' को 'ठिकाना' न मान ले। बहरहाल, अनेक डायरियोका यह पहला पन्ना आपकी सेवामे प्रस्तुत है। लेखक आपसे आज्ञा लेता है। उसकी जिम्मेदारी यहाँ समाप्त हो जाती है। पाठकोकी टिप्पणियाँ इन पृष्ठोपर कैसे अंकित है, ये पाठक कौन है, इसके बारेमे छान-बीन हो रही है।

[१]

एक नागरिककी डायरीसे

नया साल। नयी डायरी। नया पृष्ठ। बडा भला लग रहा है। जी होता है, अपने सभी मित्रोको शुभकामनाओके पत्र भेजूँ। किन्तु सोचता हूँ, नये सालके बारेमे सभी मित्रोकी एक राय नही। स्वाधीन भारतका निवासी अपने पुराने विदेशी प्रभुओ द्वारा चलाये गये नये सालको आज भी अपना नया साल माने, यह शोभा नही देता। तब फिर हमारा नया दिन कौन-सा है ? कोई २६ जनवरीकी बात करता है, कोई १५ अगस्त-की। कही दिवालीसे साल शुरू होता है, कही चैतसे। सरकारी चिट्ठका साल और हमारी पंचवर्षीय योजनाओका साल भी शायद पहली अप्रैलसे शुरू होता है—ठीक भी है। पहली अप्रैल = मूर्खोका दिन। नही, आज नये वर्षकी मगल-कामनाओके दिन मुझे कोई कडवी या व्यङ्गकी बात नही कहनी चाहिए। हर चीजका उज्ज्वल पक्ष देखना चाहिए। हमारे देशमे आबादी बढ रही है, सरकारी नौकर बढ रहे है, बजटके आँकड़े बढ़ रहे है, थानो और कचहरियोमे काम बढ़ रहा है, बाजारोमे चीजोका भाव बढ़ रहा

है, विश्वविद्यालयोमे अनुशासनका अभाव बढ रहा है। "बढना" शब्दमे जो विशालता है, जो ऊँची दृष्टि है, आजके दिन हमे उसीका चिन्तन-मनन करना चाहिए। गोरखपुरकी गीता डायरी मैने खरीदी है। मुझे यही पसन्द है। इसमे भी नया साल पहली जनवरीसे प्रारम्भ होता है। इसीको प्रामाणिक मानना चाहिए। यह पृष्ठ भगवानकी वाणीसे प्रारम्भ होता है :

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥

भगवानने कुरुक्षेत्रको धर्मक्षेत्र कहा है। कैसी अच्छी दृष्टि है। वहाँ युद्ध भी हो रहा है, और धर्मकी स्थापना भी है। इसीको कहते है पवित्र भाव। मै भी अपने राष्ट्रके दोषोको नही देखूँगा। दोषोमे भी गुण खोजूँगा। महन्तजीके उपदेशका पालन करूँगा। उनके चरित्रमे दोष है, वह नशा-पानी करते है, नेहरूजीकी निन्दा करते है, इस बातकी ओर मेरा ध्यान नही जायेगा। मै डायरी रोज लिखूँगा। बजटके हिसाबसे चलूँगा। आलस नही करूँगा। नीचे उन सब प्रतिज्ञाओंको पुनः लिख लेता हूँ, जो पिछले साल, १ जनवरीको लिखी थी। डायरी रखनेसे यह बडा लाभ है। गीता डायरीके प्रत्येक श्लोकका रोज पाँच बार पाठ किया करूँगा। इससे बड़ी शान्ति मिलती है। 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे' "कितनी अच्छी बात कही है। कुरुक्षेत्र भी है, और धर्मक्षेत्र भी है। कैसी अच्छी दृष्टि है। आज वह दृष्टि कहाँ ?

पुनश्च : वर्षमे ५०० रु० से अधिक उधार नही लूँगा। व्यायाम करूँगा।

एक पाठककी टिप्पणी

इस पृष्ठको पढकर, मुझे इस डायरी लेखक पर तरस आ रहा है। मै उसे बताना चाहता हूँ कि आजभी धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र साथ-साथ चल रहे है। पैरिस और जिनेवा आजके धर्मक्षेत्र और कुरुक्षेत्र है। वहाँ युद्धकी

इच्छा रखनेवाले बडे-बड़े महारथी इकट्ठे होते है और धर्मकी, शान्तिकी, बात करते है। दुनिया भरके सञ्जय (रिपोर्टर) इकट्ठे होकर उनके क्रिया-कलापका वायरलैस द्वारा वर्णन करते है। आशा है, यह टिप्पणी पढकर उस नागरिककी धार्मिक आस्था बढेगी और इससे स्वय उसे, राष्ट्र-को, नेहरूजीको और महन्तजीको लाभ पहुँचेगा।

[२]

एक लेखककी डायरीसे

उन सज्जनने बडी विनय और आस्थासे यह भव्य डायरी भेजी है। आग्रह है कि यह पहला पृष्ठ, आज पहली जनवरीके ही दिन लिखूँ। यह आग्रह मोहकी परिणति है, और मोह संसारमे फँसाता है। इसे दंभ भी माने, कि कुछ है जो ऊपर उठकर परास्त कर देना चाहता है कि भई, तुम लेखक हो, वडे हो, तो हुआ करो। हमारे पास भी कुछ है कि तुमसे लिखवाकर मानेगा। इस तरहके लिखनेमे मुझे अरुचि नही, कहूँ कि इसके प्रति एक आदर है क्योकि इस आग्रहकी पूर्ति कर देनेके वाद लगता है कि जैसे विजय उनकी नही मेरी हुई कि तुमने चाहा कि मै लिखूँ और सोचा कि मै नही लिखूँगा, और पाया कि मैने लिख दिया।

'कवि-कर्म बड़ा कठिन है', ऐसा वह पुराने लोग कहा करते थे, जिनके पास समय अनन्त था और जरूरत, जिसे आजकी अर्थशास्त्रकी भाषामे 'नीड' कहते है, अत्यल्प। गिनतीके कुल दो पैसे दिन भर आराम-से रहनेके लिए पर्याप्त होते थे, और वे न भी हो तो प्रकृतिके जल-फल से काम चल जाता था। तब लिखना कठिन क्यो था ? नही होना चाहिए था, था भी नही। लिखना आज भी कठिन नही है। पात्रोकी कमी नही, कथानकोकी कमी नही, लेखनी-निर्झर (फाउन्टेन-पैन) ने तो लेखन-कर्म-को और भी सरल वना दिया है। मै तो उसे भी नही छूता। स्टेनो आता

है और लिखने बैठ जाता है। शुरू क्या करूँ, कैसे करूँ यह स्टेनो या लिपिकको पता होता है और अन्त किसीको भी पता नही होता। यो सृजन उगता है, पनपता है और अपने आपमे सन्तुष्ट हो जाता है किन्तु कृतार्थ नही होता क्योकि यदि उसमे 'अर्थ' ही न उपजा तो 'कृत' क्या हुआ ? 'अर्थ' वह तो है ही जो पाठकके पास पहुँचता है, वास्तविक अर्थ वह जो लेखककी जेबमे जाता है। पाठक अपनी पात्रताके अनुपातमे 'अर्थ' पाये तो लेखक अपनी योग्यताके अनुपातमे अपने अनुरूप उसे क्यो न पाये ? योग्यता मँहगी तो होती ही है। अर्थका निरपेक्ष भोग त्याग ही है। इस त्यागकी महत्ता बढ़ानेके लिए कृत-संकल्प हूँ।

डायरी भेजनेवाले सज्जनकी टिप्पणी

जी, प्रत्यक्षको प्रमाणकी आवश्यकता नही। किन्तु क्या मँहगा होना योग्य होनेका प्रमाण है ? और जो योग्य है, किन्तु सस्ता है, वह यदि मँहगा हो जाये तो आज जो मँहगा है, उसके सापेक्ष सस्तेपनको मिटानेके लिए उसे कितना 'निरपेक्ष मँहगा' बनना पडेगा ?

[३]

नेताकी डायरीसे

हर नये सालकी डायरी शुरू कर देता हूँ लेकिन साल पुराना पड़ जाता है, और डायरी नयी बनी रहती है। पिछले साल जब डायरी शुरू की तब कुछ इरादे थे, जो मनमे जोर मार रहे थे। आज जब साल ख़त्म हो गया है तो पुराने इरादोंका हवाई किला ढहा पडा है और नये इरादे सूरजकी किरणोकी तरह चारों तरफसे आकर दिलकी नरम और गीली मिट्टीमे नये रिश्तोके अंकुर उगा रहे है। राजनीतिके मैदानमे दिन-रात तैनात रहनेवाले आदमीको कविताकी भाषासे परहेज करना चाहिए, लेकिन

मजबूर हूँ कि जब कोई हल्की-हल्की, मीठी-मीठी आवाज कानमे कुछ गुन-गुना जाती है तो दिलकी शान्त झीलमे कविताके कमल खिल आते है। आज कुछ ऐसे हीसे मूडमे हूँ। मै खुद कुछ हूँ भी क्या ? जो कुछ है, मेरा देश है, हमारी भारत माता है जिसकी जयके हमने नारे लगाये है; जिसके लिए हमने सिरपर लाठियाँ सही, सीनेपर गोलियाँ खाई और जिसके लिए हमारे शहीदोने फाँसीके तख्तेको चूमा। बडे-बडे इन्कलाव आये और गुजर गये, बडे-बडे तूफानोका हमने मुकाबला किया, आपने और हमने, और हम आगे बढे और कई मर्तबा गिरे, मगर हम फिर खडे हुए और...(यह क्या, मै भावनाओमे वह गया, और डायरी लिखनेके बजाय स्पीच देने लगा। मेरे साथ यही दिक्कत है—जब भावनाओके दायरेमे पहुँचता हूँ, तो मेरे सामने व्यक्ति रहता ही नही, देशकी जनता आ जाती है। वह मुझपर जान देती है, मै उसपर फिदा हूँ। अजीब रिश्ता है यह जो जिन्दगीको उमंग देता है और हर क्षणको नया अर्थ देता है।)

आजादीके बादकी पहली जनवरीकी हर डायरीको आज फिर पढा। इन पत्रोमे इरादोका इतिहास है। अगर इन इरादोंको ग्राफ पेपरपर रेखाओकी शक्लमे लिखूँ तो उनके साथ हिन्दुस्तानके मान-अपमानका चित्र उभर आयेगा। ऐसे ही एक दिन इरादा किया था कि हिन्दुस्तानको हम दुनियाकी राजनीतिमे चोटीपर ले जायेगे। राजनीतिके दोनो कैम्पोमे नया कैम्प हमारा था, हम नये कैम्पके थे। नये इरादोकी बुलन्दीने पुराने कैम्पको मजबूर किया कि वह हमारी बात ध्यानसे सुने, हमारी सद्भावना प्राप्त करे। हम गरजे, आसमान थर्रा गया। हमने बाण्डुङ्ग कान्फ्रेन्स बुलायी, हम एशिया-अफ्रिकाके नेता नम्बर एक थे। हमने नासरको दावत दी कि बेशक वह अपनी बन्दूक हमारे कन्धेपर रखकर फायर करे। हमारी हिम्मत देख-कर दुनियाने दाँतो तले उँगली दबा ली। हमारे इरादे आसमानपर थे, हमारे दुश्मनोके घुटने जमीनपर थे। बीचमे सब जगह या तो हमारे आदर्शवादी भाषणोकी गूँज थी, या यथार्थवादी तिरंगोकी फरफराहट।

हङ्गरीमे कुछ गोलमाल हुआ। हमने दोस्तोकी हिमायत की। परिस्थिति हमारे विरोधमे गई क्योकि हिमायत झूठी थी और परिस्थिति सच्ची। मैनन खुद मौन हो गये। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमे हमे पहला धक्का लगा। हमने अपने इरादोको परखना सीखा। राजनैतिक धक्केसे सँभल भी न पाये थे कि देखा आर्थिक मोर्चेपर हम मातपर मात खा रहे है। न अनाजकी उपज बढ रही है, न अल्प बचत योजनामे रुपया आ रहा है, न निर्यात बढ रहा है, न आयात घट रहा है। घट रहा है तो आयातके लिए रुपया। याद आया कि हम अमरीका गये थे, और शान कायम रखकर और बहुत ऊँची बाते और आदर्शकी बाते करके चले आये थे। उस वक्त अन्दाज न था कि लौटनेके बाद भारत-स्थित अमरीकी राजदूत ताना कसेगा : "पहले हमे चिन्ता थी, भारत अमरीकाके बारेमे क्या इरादे रखता है, आज हमे चिन्ता है कि अमरीकाके इरादे भारतके बारेमे क्या है ?"

खैर, हमने कोशिशे की, आजादी और व्यक्तिगत स्वतन्त्रताके हामी होनेका दावा किया—जैसे कि हम सचमुच है—और हमे कर्ज मिला उन सबसे जो नये दोस्त थे, और पुराने प्रभु थे। एक साल और बीता और नये सालके इरादोंमे हमने डायरीमे लिख लिया : 'हम विनम्र होगे।' फिर अँगरेजीमे लिखा : 'Discretion is the better part of valour.' —विवेक बहादुरीका बढिया अंश है।

पिछले साल, इसी महीने, इसी दिन कानोमे गूँजती हुई आवाज धीमी न पडी थी : 'हिन्दी-चीनी भाई-भाई।' और आज जब अब नये सालकी डायरी लिखनेका मौका आया है, तो दिलोके इरादे बदल चुके है, वक्तव्यो-के इरादे कायम है। हमने दोस्तीकी खातिर अपने बडे भाईको 'चाँदीके दस्तरखानमे रखकर तिब्बत पेश किया था।' जयप्रकाश बाबू उबल पडे। संसदमे एक शख्स है····उसने कुछ नकशे पेश किये, कुछ बयान दिये और साबित करना चाहा कि चीन हिमालयकी सीमापर छावनियाँ बना रहा है,

अपने नकशोमे भारत माताके मुकुटपर कब्जा दिखा रहा है, और मौकेकी ताकमे है कि जो चीज अब दस्तरखानमे पेश नही की जा रही है, उसे चीनी खानसामे झपट लाये। हमने उस शख्सकी बातको अमरीकी पुराणकी सत्यनारायणी कथा कहकर उड़ा दिया। वह छोटा-सा किस्सा आज बड़ी तकलीफ दे रहा है, क्योकि इतिहास उस व्यक्तिके पक्षमे है, जनमत हमारी उस पुरानी नीतिके विपक्षमे है। अब नये सालका नया इरादा है कि दोस्ती करेगे तो समझ-बूझकर।

एक पाठककी टिप्पणी

हमारी प्रार्थना है कि नेताकी डायरीके इस पन्नेमे नीचे लिखे वाक्य जोड दिये जायँ "अब समझ आयी है, और अब दोस्त भी मिला है। हमने उसका जो स्वागत किया है, उससे हमे स्वयको रोमाच हो आया है। वह पुराना वोल्गा-गङ्गावाला स्तवन आज फीका पड़ गया है। आज हमने राजनीतिको नये सिरेसे कूतनेकी कोशिश की है। हमारा इरादा है कि हम विनम्र होगे, संयत होगे, दोस्तोके चोगेको देखते ही चिपट नही जायेगे, दोस्तके चेहरेको अच्छी तरह देखेगे, उसे परखेगे और तब भाई-भाईका नारा लगायेगे। मगर हम ऐसे तंग-नजर और शक्की भी नही होगे कि छाछको फूँक मारते फिरे क्योकि हमे दूधने जलाया है। जयहिन्द।"

१ जनवरी, १९६०

एक डाकू : दो ख़त : तीन दृष्टियाँ

डायरीमे, २ मई १९६० वाले पृष्ठपर केवल एक ही वाक्य लिखा हुआ है।

"आज अन्तिम रूपसे कार्ल चैसमैनको गैस-चेम्बरमे मृत्यु-दण्ड दे दिया गया।"

दिवाकरकी डायरीमे जिस कार्ल चैसमैनके नामका उल्लेख है, और जिस ढंगसे उल्लेख है उससे स्पष्ट है कि इस नामके पीछे कोई इतिहास है। इस इतिहासके सूत्रोका आभास दिवाकरके उस पत्रमे है जिसे उसने उसी दिन शान्ताके पास भेजा था—

दिवाकरका पत्र

प्रिय शान्ता,

चैसमैनके सम्बन्धमे हमलोगोने कितनी ही बार बाते की है। कितनी ही बार तेज बहस तीखी होते-होते इसलिए बच गयी कि या तो मैं चुप हो गया या तुम। आज जब कि चैसमैनका माँस दूर कैलीफोर्नियाके गैस-चेम्बरके विषाक्त धुएँमे घोट दिया गया है और अब जैसा कि उसने अन्तिम विदा लेते हुए कहा है . "चैसमैन समाप्ति और विस्मृतिके गर्भमे विलीन होने जा रहा है ताकि समाज एक अवसादपूर्ण जीवन-कालको भूल सके"—शायद है, कि मौतकी काली छायाके प्रसारमे तुम्हारा मन उस "नर-पिशाच" (तुम्हारा ही दिया हुआ नाम है यह) के प्रति कुछ कम कठोर हो सके और उसके जीवन और सघर्पकी कहानीको तुम कुछ अधिक सन्तुलित परिप्रेक्ष्यमे देख सको। चैसमैनकी जीवन-गाथाके मुख्य सूत्र क्या है ? तुम उन्हे जानती तो हो, पर शायद उस परिप्रेक्ष्यमे नही जो अब समूची कहानी और संघर्षके अन्तिम चरणका ज्ञान प्राप्त करनेके बाद सामने आता है। मत समझना, कि मै अपने दृष्टिकोणके सही होनेका दावा कर रहा हूँ।

जैसे अभी भी देख रहा हूँ कि चैसमैन, ओठोपर मुसकान लिये, धीरे-धीरे मजबूत कदम रखता हुआ, सैन क्वैन्टिन जेलके ग्रीनरूमकी ओर बढा चला जा रहा है जहाँ गैस-चेम्बरमे मौतका सामान तैयार रखा है। लम्बा कद, भरा-गठा शरीर, पीला-सा रंग, बाजकी-सी लम्बी, टेढी, नोकदार नाक, ढले-ढले होठ, आर-पार देखनेवाली आँखे, चालीसके लगभग आयु—यह कोई हताश कैदी है जो मौतकी कुरसीकी ओर जा रहा है या कोई हठीला डायरैक्टर जिसकी प्रतीक्षामे दफ्तरके अफसर बेचैन बैठे है ?

छुरा यदि सोनेका हो तो क्या पेटकी काट सुखदायक हो जाती है ? मगर, सैन क्वेण्टिन जेलके अधिकारियोने मौतके घरको सचमुच "ग्रीन रूम" बना रखा है—खूब आकर्पक हरा रंग, जैसे वन-महोत्सवका आयो-

जन हो। गैस-चेम्बरका रग अन्दरसे मोतिया-मोतिया, मौतकी कुर्सी बड़ी नर्म-नर्म, वातावरण बड़ा स्वप्निल-स्वप्निल। कुर्सीके नीचे एक स्वच्छ पात्रमे तेजाब भरा है; तेजाबके ऊपर साइनाइड विषकी टिकियाएँ झोलीमे लटक रही है। यन्त्र घूमेगा तो झोलीकी गाँठ खुल जायेगी, टिकियाएँ तेजाबमे हिलोरे उठाएँगी, एक अदृश्य धुआँ लहराने लगेगा, एक मधुर गन्ध उठेगी जैसे आडूके फूल सूँघे जा रहे हों ··

२ मई १९६०। चैसमैन गद्दीदार कुर्सीपर वैठ चुका है। मुसकान कायम है। आँखे बन्द है।····

उधर, कोर्टमे चैसमैनका वकील जजके सामने बहसका आखिरी दाव खेल रहा है। उसकी चीख-पुकार है कि केवल ३० मिनटकी मोहलत दे दी जाये और केसका नया पॉइण्ट सुन लिया जाये! जो मुकदमा १२ साल तक चला है, जिसमे १५ बार अपील सुनी गयी है, जिसमे ८ बार मौतका हुक्म निकाला जा चुका है और हर बार अपीलके फैसले तक चैसमैनको मौतके दरवाजेसे वापिस लौटा लाया गया है उसके लिए अब इस ९वी अपीलमे ३० मिनिटका समय क्या बड़ी बात है! जजने प्रार्थना स्वीकार कर ली। चैसमैन गैस-चेम्बरकी कुर्सीपर जा चुका है ··एक मिनिटकी भी देर भयङ्कर है। जजके सेक्रेटरीने बिजलीकी-सी चालसे जेलके टेलीफोनका नम्बर मिलाया ·· घबराहटमे थोड़ी चूक हो गई···· तत्काल पलटकर दूसरी बार नम्बर मिलाया: "वार्डन, सजा रोको। ३० मिनिटकी मोहलत मिली है।" "अफसोस है, सेक्रेटरी, जहरकी टिकियाएँ तेजाबमे छूट चुकी है, अभी कुछ सैकेण्ड पहले ही।"

····और, चैसमैनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी।

याद है, शान्ता, तुमने एक दिन कहा था: "चैस-मैनने कानूनका मजाक बना रखा है और जिस तरह वह १२ साल तक कानूनके साथ खेला है, इसी तरह आगे भी खेलता जायेगा; एक दिन सहज मौत उसे उठा ले

जायेगी, लेकिन अपील उसकी किसी-न-किसी कोर्टमे खड़ी रहेगी।" आज उसे कानूनने दुनियासे उठा लिया और किसी कोर्टमे भी अब उसकी अपील बाकी नही रह गयी है, लेकिन सचमुच इन्सानियतके कोर्टमे आज वह अपनी अपील छोड़कर चला गया है। क्योकि जिन्दगीके आखिरी दौरमे चैस-मैनने अपने अच्छे-बुरे होने या मृत्यु-दण्ड पाने न पानेके प्रश्नको उस बड़े सामाजिक प्रश्नसे अलहदा कर लिया था—जिसकी भूमिका उसने अपने १२ सालके जीवन-मरणके संघर्षशील दिनोमे बनायी थी। उसका कहना था कि किसी भी व्यक्तिको मौतकी सजा देना न्याय नही है, प्रतिहिंसा है।

मुझे उस पत्रकी प्रतिलिपि मिल गयी है जो चैसमैनने कैलीफोर्नियाके गवर्नर पैट ब्राउनको इसी सालके शुरूमे लिखा था, जब ब्राउनने राज्यकी विधान-सभाके सामने प्रस्ताव रखा था कि वह विचार करके निर्णय दे कि मृत्यु-दण्डका कानून कायम रखा जाये या रद्द कर दिया जाये। गवर्नर ब्राउनको चैसमैनने लिखा था —

"· मैंने बराबर सोचा है कि मै कौन-सा रास्ता अपनाऊँ जिससे मृत्यु-दण्ड सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रश्नको उस व्यक्तिगत प्रश्नसे अलहदा कर सकूँ जिसका सम्बन्ध चैसमैनसे है—चैसमैन जिसके बारेमें सोचते और बात करते समय लोग बौखला जाते हैं। मैने फैसला किया है कि मृत्यु-दण्डकी समस्याके साथ जनताका जो पागलपन और कोप संलग्न हो गया है उसे यदि मेरे प्राणोंकी आहुति द्वारा शान्त किया जा सकता है तो मै विधान सभाके सदस्योसे यह प्रार्थना करूँ कि वे कानून-मे इस बातका प्रबन्ध कर लें कि सन् १९५० में या उसके बाद जिस किसीको मृत्यु-दण्डकी सजा घोषित हो चुकी है—(शान्ता, तुम्हें ध्यान है न कि चैसमैनको सन् १९४८ में ही मृत्यु-दण्ड घोषित हो चुका था, इसीलिए इस छूटका प्रभाव उसके केसपर नही पड़ेगा—दिवाकर) और

उस सज़ाको अभी अमलमें नहीं लाया गया है, उसकी 'मृत्यु-दण्ड'की सज़ा 'आजीवन क़ैद' की सज़ामें परिवर्तित मान ली जायेगी। मैं संसार-के सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं इस क़ानूनको किसी भी कोर्टमें चुनौती नहीं दूँगा, न अपने वकीलको ऐसा करने दूँगा।

मैं ख़ुशीसे १०,००० गैस-चेम्बरोंकी मौत मरनेको तैयार हूँ अगर यह सचाई लोगोंके मनमें घर कर सके कि मौतकी सजाके क़ानूनको रद्द करनेका अर्थ यह नहीं होता है कि हम हत्याके अपराधोंको प्रोत्साहन दे रहे है। मौतकी सज़ासे हत्याकी वारदातें रुकती नहीं है, न इससे समाज-की रक्षा होती है। बल्कि, समाज अरक्षित रह जाता है क्योंकि जबतक जल्लादका या गैस-चेम्बरका अस्तित्व है समाज इस धोकेमें रहा चला जाता है कि अपराधीको दफ़न करनेके साथ-साथ हमने समस्याओंको भी दफ़ना दिया है।"

जिस समय गवर्नर ब्राउनने यह प्रश्न विधान-सभाके सामने रखा उस समय चैसमैनके प्रति जनताका क्रोध चरम सीमापर था। विधान सभाने यह प्रश्न एक कानूनी उपसमितिके सुपुर्द कर दिया। उपसमिति भी इस प्रश्नको चैसमैनके व्यक्तित्वसे अलहदा न कर सकी। ७ मत इस पक्षमे थे कि कानूनपर विचार किया जाये, ८ मत विपक्षमे थे। प्रश्न टल गया और आज चैसमैन अपने संघर्षको अधूरा छोड़कर चला गया है।

सोच रहा हूँ इस अपराधी चैसमैनके अजेय साहस और मौतसे जूझने-की न चुकनेवाली क्षमताकी बात। इन १२ वर्षोमे सैन क्वैन्टिनकी जिस २४५५ नम्बरकी कालकोठरीमे रहकर इसने मृत्युकी चुनौतियोको ललकारा वहाँके वातावरणकी कल्पना तो करो, शान्ता! एक दिन इसी साल जब वे दोनो खुफिया पुलिसके आदमी—गूसेन और फार्ब्स—जिनकी साक्षीपर चैसमैनको सन् १९४८ मे मौतकी सजा सुनायी गयी थी—उससे मिलने जेलमे आये ('लाइफ' मैगजीनने विशेप प्रवन्ध करके दोनों व्यक्तियोको

यह जाँचनेके लिए भेजा था कि इन १२ सालोमे चैसमैनमे परिवर्तन हुआ है या अभी भी उसकी 'अपराधी वृत्ति' जागृत है), तब, बातचीतके दौरानमे चैसमैनसे गूसेनने पूछा था—"क्या तुम अब भी हम लोगोसे नफरत करते हो, समाजसे विद्वेष रखते हो ?"

चैसमैनने उत्तर दिया था

"पिछले १२ बरसोंसे मै जिन परिस्थितियोमें रह रहा हूँ उनकी तो तुम कल्पना भी नही कर सकते। सोचो, इन १२ सालोंमें कितने सारे मुकदमे तुम्हारे हाथोंसे गुजरे, कितने बच्चोंको तुमने जन्म दिया, कितना सारा जीवन जिया ! और, इन सब कामोमें ज़मीनके कितने बड़े हिस्सेमें तुम रहे, घूमे-फिरे ? दूसरी ओर, मेरी कोठरीका भूगोल केवल इतना ही रहा : ४॥ फीट चौड़ाई, १०॥ फ़ीट लम्बाई और ७॥ फ़ीट ऊँचाई। इतनी तंग जगहमें किसी बड़ी नफरतको पनपनेकी गुंजाइश ही कहाँ ? ...और इन्सान मै अभी भी हूँ। अभी भी मेरा मिजाज गर्म हो जाता है...मै उन सीखचोंको देख सकता हूँ और लगता है कि मै अपना सिर टकराकर या हाथोंका जोर आजमाकर इन्हें तोड़कर निकल आऊँ।... ऐसी जगह पहुँचकर आदमी साग-सब्जीकी तरह जिन्दा रहनेका आदी हो जाता है। अगर मुझमें वह चुनौती न होती, वह मुकाबलेकी ताकत न होती, अगर मै अपनी स्थितिको निश्चेष्ट होकर मान बैठता...तो अब तक कभीका मर चुका होता।"

याद तो करो, चैसमैनने इस तंग कालकोठरीमे १२ साल रहकर क्या किया ? जब हर क्षण आँखोके आगे मौतका घुप अँधेरा छाया था, चैसमैन-ने जीवनकी ज्वलन्त लौके ही दर्शन किये। वहाँ बैठकर उस प्राइमरी पास व्यक्तिने कानूनकी दस हजार पुस्तकोका अध्ययन क़िया। १९४८ मे अप-हरण, बलात्कार, यौन-अपराध और डाकेज़नीके १७ अपराध-आरोपोमे

उसे जो २ मौतकी, २ आजीवन कारावासकी और ६० सालकी अतिरिक्त कैदकी सजाएँ हुई थी, उनसे सम्बन्धित कानूनके हर नुक्तेका उसने बारीकीसे मनन किया। अमरीकाके एक अत्यन्त प्रसिद्ध क़ानून-विशेषज्ञका मत है : "मैं चैसमैनकी गणना उन व्यक्तियोंमे करता हूँ जिन्हे मै अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धि, अत्यन्त कुशल तथा अनुभवी कानूनदाँ मानता हूँ।" इसी कोठरीमे बैठकर चैसमैनने शॉर्टहैण्डका इतना अच्छा ज्ञान और अभ्यास प्राप्त किया कि शॉर्टहैण्डके विशेषज्ञ भी चकित रह गये। बात यह हुई कि सन् १९४८ मे जब चैसमैनपर मुकदमा चला तो कोर्ट-रिपोर्टपर अर्नेस्ट पैरी मुकदमेके नोट्स प्रायः शॉर्टहैण्डमे लेता था। पैरीके हाथकी लिखी रिपोर्ट २००० पृष्ठोमे है। दुर्भाग्यसे पैरीकी मृत्यु हो गयी और उसकी लिखी रिपोर्टको एक-दूसरे स्टेनोने साधारण पठनीय लिपिमे टाइप किया। चैसमैनको निश्चय था कि किसी दूसरेके हाथकी लिखी इतनी बड़ी शॉर्टहैण्डकी रिपोर्ट अगर कोई अन्य व्यक्ति नक़ल करेगा तो पढ़नेमे गलती जरूर करेगा। चैसमैनने नये रिपोर्टरसे जिरह करके सिद्ध कर दिया कि उसकी रिपोर्टमे बेशुमार अशुद्धियाँ है! चैसमैनने अपनी १६ अपीलें स्वय लिखी। तीन ऐटॉर्नी (वकील) उसके आदेशपर ही मुकदमेकी पैरवी करते थे। वह प्रति-दिन १८ और २० घण्टे काम करता था!

कालकोठरीके इन १२ वर्षोंकी सबसे बडी उपलब्धि है वे चार पुस्तकें जो चैसमैनने यहाँ बैठकर लिखी और जिनके प्रकाशनने चैसमैनको एक प्रभावशाली लेखक ही नही प्रमाणित किया, उसके लिए लाखो व्यक्तियोकी सहानुभूति भी प्राप्त की। १९५४ मे जब उसकी पहली पुस्तक 'Cell 2455 Death Row' प्रकाशित हुई तो तहलका मच गया। मौतसे जूझने वाले 'अपराधी' और 'डाकू' कहे जानेवाले व्यक्तिके विचारोंमे यह बल, भाषामे यह ज़ोर, शैलीमे यह चमत्कार! पुस्तककी १५ लाख प्रतियाँ बिक चुकी है।

खत बहुत लम्बा हो गया है। इन सब बातोको लिखना शायद अना-

वश्यक था क्योंकि इसमे बहुत कुछ ऐसा है जो तुम जानती हो, बहुत-सा तुम पढ चुकी होगी। हाँ, स्थितियोका परिप्रेक्ष्य जो मुझे दिखाई दिया उसे एक बार तुम तक इस रूपमे पहुँचानेका लोभ मैं संवरण नहीं कर सका। चैसमैनके जीवनपर अन्तिम निर्णय देनेवाला मैं कौन? कानूनके निर्णयको ठीक मानना ही शायद सबसे अधिक निरापद है। किन्तु क्या कानून सदा सही होता है? कानून इन्सानसे बडा है, पर क्या इन्सानियतसे भी बडा है? चैसमैन व्यक्ति गलत हो सकता है, पर क्या उसका वह 'संघर्ष' भी गलत था जो उसने मौतकी सज़ाको कानूनसे निकाल देनेके लिए किया?

जानना चाहूँगा, आज तुम चैसमैनके बारेमे क्या सोचती हो?

वही,

दिवाकर

पुनश्च : तुम्हें याद होगा, १९ फरवरी १९६० का दिन जब प्रोफेसर इन्द्र हमारे यहाँ आये हुए थे। उस दिन चैसमैनको गैस-चेम्बरमे ले जानेकी तैयारियाँ हो रही थी। वह ८वी बार नियत किया गया मौतका दिन था। प्रो० इन्द्रने उस दिन इस सम्बन्धमे जो कुछ कहा था, उसने हमे गहरे चिन्तनमे उतार दिया था। इस पत्रकी प्रतिलिपि उनके पास भेज रहा हूँ ताकि इस सारी चर्चापर अन्तिम टिप्पणीके रूपमे उनके विचार प्राप्त हो सके।

—दि०

शान्ताका पत्र

प्रिय,

८ मई, १९६०

दिल्लीमे बैठकर २ मईको जब तुम मुझे पत्र लिख रहे थे, शायद उसी समय मैं भी यहाँ बम्बईमे बैठकर तुम्हारे बारेमे सोच रही थी—

यानी चैसमैनके सम्बन्धमे तुम्हारे विचारोकी बात। तुम्हारा पत्र पढा, पढकर अच्छा लगा, पर काश, तुम उत्तरकी अपेक्षा न करते! इस सम्बन्धमे अब अपनी बाते कहना अच्छा नही लगता। तुमने इतना कुछ लिखा, किन्तु अन्तिम रूपसे कही कुछ 'कमिट' नही किया। मै क्या समझू ? तुमने चैसमैनके बारेमे इस तरह लिखा जैसे वह कोई 'हीरो' हो। हो सकता है, वह हो (है न तुम्हारी जैसी भाषा ?)। उसके 'परिप्रेक्ष्य'की बात भी मैने समझनेकी कोशिश की है। किन्तु तुमने पृष्ठभूमिको परिप्रेक्ष्यमे सम्मिलित क्यो नही किया ?

ऐसे भी तो व्यक्ति होते है, 'अपराध' जिनकी सहज वृत्ति होती है। चैसमैन ऐसा ही व्यक्ति था। और, यदि वह ससारसे चला गया है तो क्या कोई बहुत बड़ी प्रतिभा विनष्ट हो गई ? साहसकी ही एक किस्म है—दुःसाहस। एक जेलके अन्दरका प्रकार है, एक जेलके बाहरका। कैलीफ़ोर्नियाके लोगोसे पूछो, 'रैड लाइट बैंडिट' (लाल डाकू) को वे लोग भूल सकेगे क्या ? लौस एंजलीसकी 'लवर्स लेन'के सुकुमार प्रणयी-युगलोसे पूछो जो इस डाकू चैसमैनकी टौर्चकी लाइटसे आतकित रहते थे और समझ नहीं पाते थे कि यह लाल चौंध पुलिसकी है, या लाल डाकूकी। धनका लोभ और विकृत यौन-भावना इस दुष्टको लवर्स लेनमे खीच ले जाती थी। अँधेरेमे लाल रौशनीकी चौंध फेककर यह बन्दूककी दुनाली युवककी छातीपर धर देता था और युवतीको घसीटकर अपनी कारमे ले आता था—तेज स्पीडसे चोरीकी कार कहाँ पहुँचती थी, एकान्तमे युवतीकी क्या दुर्गति होती थी! अप्राकृतिक यौन-वासनाकी बात पुलिस रेकॉर्डमे है, वह उल्लेखनीय नही है किन्तु क्या 'परिप्रेक्ष्य'के लिए वह अप्रासंगिक है ? तुमने क्यो नही उल्लेख किया उस १७ सालकी युवतीकी करुण चीत्कारोका जिसे चैसमैनकी वासनाने इतना भयभीत किया कि वह पागल हो गई और आज भी कैलिफोर्नियाके किसी पागलखानेमे बेहोश बदनसीबीके दिन काट रही है ?

नही, यह सब मै नही लिखना चाहती थी। पत्रको लम्बा नही करूँगी। जानती हूँ कि शायद ५ लाख हस्ताक्षरोकी अपील आइजनहॉवरके पास पहुँची थी कि चैसमैनको मृत्यु-दण्ड न दिया जाये; जानती हूँ कि चैसमैनकी मौतके दिन सैन क्वेन्टिनकी सडकोपर औरतोने आँसू बहाये; जानती हूँ कि हॉलीवुडकी एक प्रसिद्ध ऐक्ट्रेस चैसमैनकी प्राणरक्षाके लिए पागलोकी तरह दिन-रात घूमती फिरी, जानती हूँ कि २ मईको मार्लन ब्रैण्डो अधिकारियों-की ओर चैसमैनकी विशेष अनुमति लेकर ग्रीनरूमके दरवाजेपर मौजूद था कि वह चैसमैनके जीवनकी फिल्म बनायेगा और मृत्यु-दण्डके विरुद्ध चैस-मैनके अभियानको आगे बढायेगा···और यह भी जानती हूँ कि क़ानूनने अपना काम पूरा किया। ऐसा चैसमैन निश्चेष्ट होकर जिन्दा रहता तो क्या, और अब मरकर निश्चेष्ट हो गया तो क्या! यह भी जानती हूँ कि एक पिताने गवर्नर ब्राउनको तार दिया था—"जबतक चैसमैन जिन्दा है, हमारी लडकियाँ अरक्षित है," और यह भी जानती हूँ कि अमरीकाके अनेक राज्योमे चैसमैनकी किताबोसे प्रभावित औरत-मर्द बड़े-बड़े पोस्टर लिये परेड करते फिरे है। पोस्टरोके नारे भी मुझे मालूम है! 'संस्थाबद्ध हत्या बन्द करो!'·····'मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, न कि साइनाइड विष!'····'न्याय दो, प्रतिहिसा नही!' इत्यादि-इत्यादि।

(यह पत्र जानबूझकर ही अधूरा छोड रही हूँ····चैसमैनका ही किस्सा लिखकर रह गये। कुछ और भी तो लिखना था। पत्रकी प्रतिलिपि मै भी प्रो० इन्द्रके पास भेज रही हूँ।—शान्ता)

प्रो० इन्द्रकी टिप्पणियाँ

दिवाकर और शान्ताके लिए,

क्रमबद्ध यहाँ कुछ नही लिख रहा हूँ। तुम दोनोके खत पढकर जो कुछ बिखरे विचार आये, उन्हे ही यहाँ दे रहा हूँ।

१. हमारे ही देशमे डाकुओके साथ विनोबाजी जो प्रयोग कर रहे है, उसके सम्बन्धमे तुम दोनोके विचार क्या है ? इनमे एक डाकू ऐसा है जिसने शायद २१ हत्याएँ की है और स्कूलसे उठाकर बच्चोको भी ले गया है, और बापसे रुपये न पानेपर बच्चेको मार डाला है। निश्चय ही, विनोबा यह नही चाहेगे कि इस व्यक्तिके प्राण ले लिये जायँ। कहते है, उसे पश्चात्ताप है। और चैसमैनको ? मौतकी अन्तिम घडियोमे चैसमैनने समय-समयपर जो कहा उसके कुछ अंश है :

"आजका चैसमैन वह नही जो १२ साल पहले था। यदि बचपन-मे उसे सहारा मिलता तो सुधर जाता।"

(मैं इस बातसे सहमत हूँ— इन्द्र)

"आज यदि मुझे जिन्दा रहनेका अवसर मिलता तो मैने अपनी रचनाओसे साहित्य और समाजके हितमे सार्थक योगदान दिया होता।"

(हो सकता है।—इन्द)

"मै मानता हूँ कि मेरा भी कुछ योगदान हुआ है। वह इस बातमे नही कि मैने यह प्रमाणित किया हो कि चैसमैन कोई अच्छा आदमी है, बल्कि इस बातको प्रमाणित करनेमे कि कानून चैसमैन-की रक्षा कर सकता है। और, अगर यह चैसमैनकी रक्षा कर सकता है, तो आप स्वयं भी कुछ आश्वस्त रह सकते है .."

(अर्थात् ?—इन्द्र)

२. कानून भी शायद किस्मतका खेल है। चैसमैनके विरुद्ध यह अभियोग प्रमाणित नही हुआ कि उसने हत्या की है। हत्या न की हो, फिर भी प्राणदण्ड मिले यह कैलीफोर्निया राज्यका नियम है। वहाँ 'अपहरण जिसमे शरीरको क्षति पहुँची हो' के लिए प्राणदण्ड निर्धारित है।

सोचता हूँ, यदि चैसमैन भारतमे उत्पन्न हुआ होता, तो अपराधके इन्ही तथ्योपर प्राणदण्डसे बच जाता ।

३. सुप्रीम कोर्टमे तीन जज चैसमैनके विपक्षमे थे, दो पक्षमे । चैसमैनको मौतका दण्ड मिला । एक व्यक्तिकी रायपर प्राणोका दारमदार, दो व्यक्तियोकी राय निरर्थक ' समझना चाहिए कि यह कानूनका नही, गणित और मनोविज्ञानका खेल है ।

४. अन्तिम दिन जब चैसमैनसे पूछा गया :

"दयाकी भिक्षा माँगनेपर मुक्ति मिल सकती है । माँगोगे ?"

उसका उत्तर था .

"मै कुछ नही कह सकता । इसका दारमदार इस बातपर है कि शर्तें क्या है । मान लो, मुझसे कहा जाये : 'चैसमैन, तुम्हे अभी, पाँच मिनिटके अन्दर ही निर्णय लेना है, यह कमरा छोड़नेसे पहले । यदि तुम यह स्वीकार कर लो कि तुमने ये सब अपराध किये है और तुम अब दयाकी भिक्षा चाहते हो, तो मै तुम्हारी मौतकी सजाको रद कर दूँगा ।'

मै नही समझता कि मै इस तरहकी कोई बात करूँगा । मै तो सीधा 'ग्रीन रूम' की तरफ चल पडूँगा—सही हो या गलत !

इसे अडियलपन कहो; अक्लका दिवालियापन कहो; यह समझदारी हो या नासमझी—१२ सालके इस लम्बे दौरने मुझे जो भी बना दिया है, इस ४० सालकी उम्रमे जब कि शायद अभी मुझे २० साल या २५ साल और जिन्दा रहना हो—मै बस जो हूँ, यह हूँ । सचमुच मेरा यह पूरा विश्वास है कि मै इसकी अपेक्षा मरना ही पसन्द करूँगा ।"

५. तुम्हें मालूम है, दिवाकर और शान्ता, कि इस प्रकारका निर्णय देनेमें मुझे सदा हिचक होती है। 'जज नौट' बाइबिलका आदेश है। मैंने कुछ विचार सामने रखे है। निर्णय अपना-अपना अलगसे लेना। क्या ठीक है और क्या गलत, यह सर्वज्ञ ही जान सकता है।

प्यार और आशीर्वाद।

—इन्द्र

दिल्ली, ३ जून १९६०

माई डियर कैनेडी

माई डियर कैनेडी,

बधाइयो और आनन्द-उत्सवोका क्रम जब समाप्त हो गया है, तब यह पत्र-मै तुम्हे लिखने बैठा हूँ। सारे ससारके कोने-कोनेसे तुम्हारे पास अभिनन्दन और मंगलकामनाएँ पहुँची है। एक अमेरिकन होनेके नाते मेरा सीना गर्वसे फूला-फूला रहा है। हमारे राष्ट्रके एक समर्थ युवकके स्वप्न अनन्त आकाशमे उड़नेवाले ऊँचे-से-ऊँचे नये चाँदके समकक्ष पहुँचे और सफल हो तो किस नवयुवकको रोमाच न हो आयेगा ? पर आज मै पुलकित और भावुक होनेसे अपने आपको बचाऊँगा क्योकि यह पत्र कुछ ऐसे प्रश्नोको लेकर लिख रहा हूँ जिन्होने मुझे पिछले कई

हफ्तोंसे उलझनमे डाला हुआ है। तुम्हे, प्यारे दोस्त, यह जानकर तसल्ली होनी चाहिए, और खुशी होनी चाहिए, कि मेरी तरह हजारों-लाखो युवक आज विश्वकी समस्याओको इस दृष्टिसे देख रहे हैं जैसे हमलोग स्वय कैनेडी हो और इन समस्याओको सुलझाना हमारा उत्तरदायित्व हो। ये भावनाएँ प्रतिध्वनित हो रही है न तुम्हारे सीनेमे भी ? तो लो, सुनो।

कहाँसे शुरू करूँ ? पहले अपने अन्दरके डरकी बात कह दूँ। पुराने लोगोकी तरह दकियानूसी नहीं हूँ। साइन्सके तर्कको भी समझता हूँ, पर २१ जनवरीको जो देखा-सुना उसने परम्पराके किसी पड़दादाको मेरे अन्दर चेतन कर दिया। उस दिन सारी अमेरिकन नेशन उमड़ पडना चाहती थी तुम्हारी गद्दी-नशीनीका जश्न देखने। लेकिन कहाँ उमड पाई ? १८ करोड आदमियोकी अमेरिका स्तब्ध थी कि ऐसी आँधी, ऐसा तूफान ऐसा कयामतका-सा सीन तो बरसोसे किसीने नही देखा था। सात इंच मोटी बरफकी तहने लोगोके प्राण खुश्क कर दिये। खबर उड़ी कि आयोजन स्थगित करना पडेगा, कोई चारा न था। पर; तुम डटे रहे। यही तो शानदार बात है तुममे। उत्सवका समय करीब पहुँचा तो कोहरा छँटने लगा और सब अधिकारी, राजदूत, विश्व-राज्योके प्रतिनिधि ताबडतोड़ पहुँचे उत्सवमे भाग लेने। जल्सा आध घंटे बाद शुरू हो सका। यह किसका इन्तजाम था ? क्योकि देरीका कारण यह भी रहा कि मंचपर उतनी कुरसियाँ नही थीं, जितने आदमियोंको वहाँ बैठनेके लिए निमन्त्रित किया गया था। बात छोटी है या बडी, नही जानता। अशोभन और अशुभ उस दिन, उसी क्षण, उसी स्थानपर और भी घटित हुआ। जल्सा शुरू हुआ ही था कि तुम्हारे पाँवोके आसपास धुँआ उठा। मंचके उस हिस्सेमे आग लग गई थी, शायद फ्यूज हो गया था। तुम विचलित नही हुए, न तुम्हारे पास बैठे हुए आइजनहॉवर। अधिकारियोकी तत्परता कारगर हुई, आग बुझ गई। न बुझती तो ? कार्यक्रम कुछ शान्तिसे चला ही था कि जब हमारे राष्ट्रके गौरवशाली वयोवृद्ध कवि रौवर्ट फ्रौस्ट

अवसरके लिए लिखी गई अपनी विशेष रचना पढ़ रहे थे तो दूर पार्श्वभूमिसे आती हुई बरफकी चौंधने उन्हे प्रायः अन्धा कर दिया। टेलीविजनपर वह दृश्य देखकर मै कितना विकल हुआ था। धन्य है यह ८६ वर्षका हमारा राष्ट्रकवि कि वह शान्त और गम्भीर रहा और जब लिखी हुई पंक्तियाँ पढना असम्भव हो गया तो उसने अपनी पुरानी कविता का मौखिक पाठ प्रारंभ कर दिया जो अवसरके अनुकूल थी। लम्बे विवरणमे जानेसे क्या लाभ ? मुझे ध्यान आया था कि किसीने कहा है कि यह सन् 1961 बडा विचित्र है, कुछ जादूई प्रकृतिका, क्योंकि सन् 1881 के बाद यह ऐसा सन् आया है जो सीधा और उल्टा एक-सा पढा जाता है, यानी अगर कागजका ऊपरका सिरा पलटकर नीचेकी ओर कर दे और उल्टा पढें तो वही 1961। आगे ऐसा इन्द्रजाली वर्ष ४०४८ साल बाद आयेगा—सन् 6009। जाने दो ये जन्तर-मन्तर-जैसी वाहियात बाते ! मै भी क्या पचडा ले बैठा !

२१ जनवरीके उद्घाटन समारोहमे जो भाषण तुमने पढा, डियर कैनेडी, वह सचमुच सितारोके जगमगाते अक्षरोमे लिखा गया था। उसे सुनकर प्रेरणाकी पँखुडियोने अन्दर ही अन्दर कही आँखें खोल दी और मन खिले हुए श्वेत गुलाबकी तरह महक गया। भूल गये हम आँधी, झक्कड, कोहरा और हिमपात वाली वह पिछली त्रस्त रात। 'प्रोफाइल्स इन करेज' (साहस की छवियाँ) का लेखक, पत्रकार कैनेडी हृदयका धनी और शब्दोका शिल्पी है, इसमे कोई सन्देह नही। अभी तक गूँज रहे है तुम्हारे ज्वलन्त वाक्य मेरे कानोमे :

"प्रत्येक राष्ट्र, चाहे वह हमारा भला चाहनेवाला हो या बुरा, यह अच्छी तरह जान ले कि हम स्वाधीनताकी रक्षा और सफलताके लिए प्रत्येक मूल्य चुकायेंगे, प्रत्येक भार उठायेंगे, प्रत्येक कष्ट झेलेंगे, प्रत्येक मित्रका समर्थन करेंगे और प्रत्येक शत्रुका मुकाबला करेंगे ...

"हम प्रतिज्ञा करते है, दुनियाके दूसरे आधे हिस्सेकी झोपड़ियों

और गाँवोंमें रहने वाले उन राष्ट्रोंके सामने जो अपनी जनताके दुर्भाग्य की जंजीरोंको तोड़नेके लिए जूझ रहे हैं, कि हमारे सर्वोत्तम प्रयत्न उनकी सहायताके लिए समर्पित हैं ताकि वे अपनी सहायता आप कर सकें···

"जो राज्य हमारे विरोधी हैं उनके सामने हमारी प्रतिज्ञा तो नहीं, हमारा यह अनुरोध प्रस्तुत है कि इसके पहले कि विज्ञानकी अन्धी सत्यानाशी शक्तियाँ सारी मानवताका बेड़ा ग़र्क कर डालें, दोनों दल शान्तिकी खोजके लिए नये सिरेसे प्रयत्न करें।

"आओ हम विज्ञानके विस्मयोंका आह्वान करें! हम मिलकर सितारोंकी खोज करें, मरुभूमियोंपर विजय पायें, रोगका उच्छेद करें, समुद्रकी गहराइयोंको नियोजित करें तथा कलाओंको और व्यापारको उत्तेजना दें!"

भाषणमे एक बात जो विशेष रूपसे मुझे पसन्द आई वह यह कि तुमने अपनी दृष्टि मानवकी व्यापक समस्याओंपर केन्द्रित रखी और अमेरिकाके घरेलू प्रश्नोंको नही छुआ। वह अवसर ही ऐसा था। भावनाओं, विचारो और कार्योंके सन्तुलनकी क्षमता ही तुम्हारी बड़ी पूँजी है। घरमे बैठकर मुझे सबसे पहले तुम्हारे उस कार्यक्रममे रुचि होनी चाहिए थी जो तुमने काँग्रेसके सामने रखा है—(१) राष्ट्र में कम-से-कम वेतनकी दर १ डौलर से बढाकर सवा डौलर प्रति घंटा कर दी जाये, तत्काल १.१५ डौलर तो हो ही जाये; (२) सामाजिक सुरक्षा के लाभ (सोशल सिक्युरिटि बेनिफिट) की दर ३३ डौलरसे ४३ डौलर कर दी जाये (३) राष्ट्रमे बढ़ती हुई बेकारीको रोका जाये; (४) बडी समृद्धिके बीच आर्थिक संकटका जो दैत्य सिर उठाकर झाँक रहा है उसे काबूमे रखा जाये; (५) शिक्षाके लिए अधिक कोष निश्चित किया जाये और संघसे सम्बद्ध राज्योंको छूट दी जाये कि वे चाहे तो इसे अध्यापकोंकी वेतन-वृद्धिमे लगायें, चाहे शिक्षाभवनोके निर्माणमे ताकि केन्द्रीय हस्तक्षेप

का डर न रहे'''आदि आदि। लेकिन मुझे सचमुच इन सब बातोकी उतनी चिन्ता नही जितनी इस बातकी कि ससारके नौजवानोका यह प्रतिनिधि ससारकी समस्याओको किस रूपमे हल करना चाहता है। जिन व्यापक सिद्धान्तोकी चर्चा उद्घाटन-भाषणमे की गई है, उन्हे प्रत्येक समस्याके संदर्भमे किस रूपमे कार्यान्वित किया जायेगा।

संसारके नक्शेको फैलाकर देखता हूँ तो खतरेके रक्तबिन्दुओकी भरमार पाता हूँ—(१) एशियाकी कायाको चीनियोके नृशस बूट रौदने को सदा तैयार है; (२) अफ्रीकाके गृहयुद्धको विदेशी सत्ताओका स्वार्थ विश्वयुद्धमे परिणत करनेको उद्यत है, (३) हमारी सीमापर बैठकर क्यूबाका कैस्ट्रो हमारे विरोधियोको निमन्त्रण दे रहा है, (४) फ्रांस शंकालु है कि हम एल्जीरियाके मामलेमे खुलकर उसका साथ क्यों नही दे रहे है; (५) बर्लिनकी समस्या बारूदका पिड है और बार-बार चिनगारियाँ पास रखी है, (६) मध्यपूर्वके अरबोको शिकायत है कि हम इजराएलके अस्तित्वको स्थायी क्यो मान रहे है और हमने नयी कैबिनेटमे दो यहूदी क्यों लिये ··(७) नैटोकी शृखला कमजोर हो रही है।

और, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, शीत युद्धका, रूसके साथ हमारे सम्बन्धोका और राष्ट्र संघके भविष्यका।

नही, सबसे बड़ा प्रश्न है इस बातका कि एटम बम आदमीकी हस्ती को दुनियामे कायम रखेगा या नही। जिन हाथोमे एटम बम है, उन हाथोका संचालन करनेवाला दिमाग सही है या नही, उसमे विवेक-बुद्धि जाग्रत है या नही।

कभी-कभी डर होता है, कही तुम समस्याओका विश्वव्यापी रूप देखकर घबरा न जाओ। तुमने अपने भाषणमे कहा था :

"भेरी बज गई है और हमे बुलाया जा रहा है—इसलिए नही कि हम हथियार ले, यद्यपि हथियारोकी हमें जरूरत है; इसलिए नहीं कि हम लड़ाईके मोर्चे पर उतरे, यद्यपि लड़ाईके पाटोंके बीच हम दबे

हुए हैं; बल्कि इसलिए कि हम, वर्ष-प्रतिवर्ष, लम्बे धुँधलकेकी लड़ाई का दायित्व सँभाले···हम मनुष्य जातिके इन सर्वव्यापी शत्रुओंसे युद्ध ठाने : आतंक, दारिद्रय, रोग और स्वयं युद्धसे।"

इस युद्धमे मै तुम्हारी सफलताकी कामना करता हूँ। पत्र समाप्त करनेसे पहले, तुम्हे विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि जिस शान्ति-सेनाके निर्माणका काम तुमने व्यापक रूपसे उठाया है, उसमे मेरा सक्रिय सहयोग तुम्हारे साथ रहेगा। मैने सारी सूचनाएँ मँगवा ली है। जो १०–१५ हजार पत्र तुम्हारे पास आये है और जिन हजारो युवक-युवतियोने तुम्हारे आह्वानपर दूर-दूरके पिछड़े देशोमे जाकर सेवा-कार्य करनेका व्रत लिया है, उनमे एक नाम मेरा भी जोड़ लेना। मै दिलसे तुम्हारे साथ हूँ—थ्री चियर्स फॉर अवर डियर कैनेडी !

तुम्हारा

पीटर निक्स

प्रश्न—क्या यह सच है कि तुम्हारी पत्नी जैकलीनने लंदन-स्थित फ्रैंच राजदूत जाँ शौवेलके प्रसिद्ध और रस-सिद्ध रसोइये वानहानको अपने रसोईघरके लिए उड़वा लानेकी चेष्टा की थी ? वोडहाउसने इस मामलेको कहानीमे गूँथकर वाहवाही लूटनी चाही है। पर, मै जानता हूँ जैकलीन जितनी सुन्दर है उतनी ही शालीन भी। गिव हर माई लव, जॉन !

जनवरी, १९६१ —पी॰ एन॰

मौत—एक माध्यम

डायरी के कुछ पृष्ठ

अंग्रेजी साहित्यके अमेरिकन 'पापा', अर्नेस्ट हेमिग्वे, आज चल बसे। 'चल बसे' भारतीय मुहावरा है जो जीवनके सतत आवागमनका द्योतक है। मालूम नही, स्वयं हेमिग्वे 'बसने'के भावको मानते थे या नही, लेकिन मृत्युके छोर तक चलते रहना और वहाँ पहुँचकर ही दम लेना वह कहानीकी कृतार्थता मानते थे : "सारी कथाएँ, यदि उन्हे दूर तक जारी रखा जाये, तो अन्तमे मौतकी घटनातक जा पहुँचती है। जो व्यक्ति कथाको इस परिसमाप्तिको आपसे छिपा कर रखता है वह सच्चा कहानीकार नही।"

क्या हेमिग्वेने जीवनको मौतके माध्यमसे ही जाना-पहचाना ? लगभग ४५ वर्षो तक वह साहित्यपर छाये रहे। उनके प्रायः सभी उपन्यासोमे उद्दाम, रूखे, सहज, सशक्त जीवनका चित्रण है जिसे मौतका साहचर्य यथार्थ और पुष्ट बनाता है। हेमिग्वे साहित्यकारोकी उस पीढीके अगुवा थे जो महायुद्धोकी विभीषिकाके बीच जिई और जिसने सामाजिक मूल्योकी अवमाननाके बीच अपनी राह खोजी। राह खोजी, और भटकी, और खो गयी। और, इस तरह जिसने 'लॉस्ट जेनरेशन'की संज्ञा पायी। हेमिग्वेके कथा-नायक चाहे स्पेनमे गृह-युद्ध लडते हों, या साँडोसे मल्ल-युद्ध करते हो, या डाकुओके साथ पिस्तौलका खेल खेलते हो, या नारी नामकी लचीली, निस्तेज वस्तुसे प्रणय करके अपने उद्धत पौरुषको अभिव्यक्ति देते हो, या, इस सबके बीच, युद्ध और हिसाकी अग्निवर्षामे दम तोड़ते ककालों और लाशोंको घृणा-भरी ऊबके साथ लाँघते-लपकते निरुद्देश्य बढते जा रहे हो—सब प्रकारान्तरसे हेमिग्वेके ही प्रतीक है, उसकी अपनी अनुभूतियोके साक्ष्य है।

प्रत्यक्ष अनुभूत स्थितियोंके चित्रणको ही हेमिग्वेने साहित्यका प्राण माना है। लेकिन चित्रण और शैलीके क्षेत्रमे हेमिग्वेने जो दिया वह आधुनिक साहित्यकी एक प्रमुख उपलब्धि है। सीधा, रूखा, सबल वाक्य जिसमे न विशेषणोकी सजावट, न आवेगोकी आरोपित गरमाई, फिर भी जिसका संघात अचूक और अद्भुत। दो पीढियोने इस शैलीकी नकल करनेकी चेष्टा की, खूब नकल की, किन्तु हेमिग्वे अद्वितीय रहे। अलकारो और अवगुण्ठनोमे ढँकी अभिव्यक्तिके कटाक्षोंको हम जानते है। लेकिन सान-चढ़ी नंगी तलवारकी काटका आनन्द कुछ और ही है, यह हमने हेमिग्वेको पढकर जाना। और जाना कि इस सरल-सबल, रूक्ष प्रांजलताके सृजनमे हेमिग्वेको इतना श्रम करना पडता था कि एक अध्यायका संशोधन कभी-कभी ३०, ४० या ५० वार भी हो जाता था।

हेमिग्वेके उपन्यास 'द ओल्डमैन ऐण्ड द सी' का नायक बूढा मछुआ

सैंटियागो समुद्रपर मछली पकडने गया है। वह एक बड़ी मछलीको पकडनेके लिए तीन दिनतक उससे और समुद्रकी लहरोसे घोर संघर्ष करता है और विजयी होता है। मछलीको पकडकर किनारेपर लाता है तो पाता है कि वह उससे प्यार करने लगा है। प्यार करने लगा है, इसीलिए वह उस मछलीको नि.संकोच मार भी डालता है—'इफ यू लव हिम, इट इज नॉट ए सिन टु किल हिम !' बडी विकट बात है ! लेकिन, न मालूम कैसे समूचे उपन्यासकी पृष्ठ-भूमिमे जीवनके सौन्दर्यकी प्रतीक इस महान् मछलीका मृत्युके माध्यमसे किसी सर्वव्यापी सत्ताके साथ एकात्म हो जाना अस्वाभाविक नही लगता।

मौतका यह आकर्पण अजगरकी आँखोके नगीनोका आकर्पण है कि दूरस्थ जानवर विवश होकर खिचा चला आता है और उदरस्थ हो जाता है। कौन कह सकता है कि मौतका यही अनिवार्य आकर्पण आज इस रविवारीय प्रभातमे स्वय हेमिग्वेको खीचकर बन्दूक घरमे नही ले गया था ! पत्रोमे खबर है कि हेमिग्वेने अपनी चाँदी-मढी, चिर-संगिनी दुनाली बन्दूक साफ करनेके लिए निकाली थी। नलीको ओठोमे भीच, गोली निकालनेके लिए जब लीवर ऊपर उठाने लगे तो बन्दूक दग गई और खोपड़ी उड़ गई।

जीवन कितना लम्बा और जीवनको जीनेका व्यापार कितना तूल-तवील ! लेकिन मृत्यु ? एक सिमटी-सी, क्षणिक-सी चीज; एक ऐसा पल जो अन्तिम होता है और सब कुछ समाप्त कर देता है। किन्तु कौन कह सकता है कि मौत सचमुच ही अन्त है। व्यक्तिका अन्त चाहे वह हो भी, किन्तु व्यक्तित्वके तो प्रसारका ही माध्यम है वह।

क्या हेमिग्वेके उपन्यासोमे वर्णित जीवनका बेलाग नैसर्गिक व्यापार और सर्वव्यापी मृत्युके प्रति यह निर्भय निरपेक्ष दृष्टि, सचमुच उसकी अपनी दृष्टि और मान्यता है ? तो फिर क्या है जो आदमीको अन्दरसे तोड़ता है, भयाक्रान्त करता है, चिडचिड़ा बनाता है और अपनी उपलब्धियोको

निःसारताका आभास दे-देकर समूचे जीवनको निष्क्रिय और निष्फल बना देता है ? जीवनके अन्तिम दिनोमे हेमिग्वे इसी प्रकारकी स्थितिमे पहुँच गये थे। क्या शरीर और स्नायुओकी सबल प्रक्रियाके ही सन्दर्भमे जीवनधारी अपने जीवनका मूल्य आँक सकता है ?

आज हेमिग्वे चल बसे। उनकी एक उक्ति बार-बार याद आती है, "आदमीको विनष्ट किया जा सकता है, किन्तु पराजित नही।"

हेमिग्वेकी मृत्युके प्रसगमे, एक दूसरी मौतका ध्यान आता है, विशेपकर इसलिए कि उस मृत्युने हेमिग्वेको हिला दिया था और उसकी छीजती शक्तियोंको आघात पहुँचाया था। हाल ही मे घटित यह मृत्यु हेमिग्वेके आत्मीय मित्र, हॉलीवुडके विश्व-विख्यात स्टार गैरी कूपरकी थी। दोनो मित्रोने जीवनके चलते हुए प्रवाहमे अवगाह किया जिसके दोनो तटोपर प्रकृतिका खुला प्रसार था—जहाँ घुड़दौड़, मल्लयुद्ध, शिकार, सूर्य-स्नान, 'गनफाइट' और हुर्रा कहनेवालोकी कतारें थी। हेमिग्वेकी दाढ़ी और गैरी कूपरका हैट, जनताके मनमे दोनोके व्यक्तित्वोके संकेत-चिह्न बन गये है। पिकासोने बड़े प्यारसे कूपर-स्टाइलका हैट एक बार गैरी कूपरसे माँगा था और पाया था।

हेमिग्वे और गैरी कूपरके कार्य-क्षेत्र यद्यपि अलग-अलग थे किन्तु दोनोने अपनी शैलीकी विशेषताके लिए एक-से मानदण्डोको अपनाया और शैलीके निजी माध्यममे अद्वितीय सफलता पायी। जो बात हेमिग्वेने साहित्यमे पैदा की, वही गैरी कूपरने अभिनयमे। गैरी कूपरने अभिनयको अधिकसे-अधिक सरल और सहज बनानेका प्रयत्न किया। नोकीले उभार उसे पसन्द नहीं थे। अति-नाटकीयतासे उसे चिढ थी। भावनाओ और आवेगोकी सच्ची अनुभूतिकी सरल अभिव्यक्ति ही उसका लक्ष्य था। हेमिग्वेकी सृजन-प्रक्रिया भी यही थी।

लेकिन मौतका साक्षात्कार दोनोने अलग-अलग ढगसे किया। गैरी कूपर मृत्युसे पहले लगभग एक साल तक कैन्सरके रोगी रहे। शुरुमे

डॉक्टरोने उन्हे नही बताया कि रोग क्या है किन्तु जब रेडियो सक्रिय-कोबाल्टका इलाज आवश्यक हो गया, तब गैरी कूपरको पता लग गया कि मौत अवश्यम्भावी है, और प्रत्येक पल मृत्युकी यात्राकी ओर उन्मुख है। बहुत धीरज और तटस्थ भावसे उसने मौतकी प्रतीक्षा की। जिस दिन गैरी कूपरकी मृत्युका समाचार फैला, ससार शोक-मग्न हो गया था। आज हेमिग्वेकी मृत्युने और मृत्युके प्रकारने हमे अवसाद दिया है।

स्वस्थ शरीर, दुर्बल मन, दुर्बल शरीर, स्वस्थ मन—दोनोकी अन्तिम परिणति मृत्यु है। जीवनके सन्दर्भमे मृत्युका प्रकार और मृत्युकी पूर्ववर्ती परिस्थिति कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्यो न हो, सबसे महत्त्वपूर्ण बात है यह कि किसी लोकप्रिय व्यक्तिकी मृत्युके माध्यमसे हम उसके व्यक्तित्वके किन पहलुओको पहचाननेका प्रयत्न करते है और जीवितोके लिए अनुभवके किन नये क्षितिजोकी उद्भावना करते है।

चाँद-तारोंकी दुनियाकी ओर —ख़बरें और हाशिए

४ अक्तूबर १९५७ के बाद

४ अक्तूबर १९५७ को रूसने जब पहला उपग्रह (स्पूतनिक) छोड़कर संसारको स्तब्ध कर दिया था और मनुष्यकी कल्पनाको सचमुचके पंख दे दिये थे कि वह चाँद-तारोंकी दुनियामें सदेह विचरण करे, तब इस रोमांचक सम्भावनाने अनेक विकट प्रश्न वैज्ञानिकोंके सामने उपस्थित कर दिये थे :

१. मनुष्य यदि अपने स्पूतनिक-यानको पृथ्वीका उपग्रह बनाकर उसके चारों ओर चक्कर काटनेका उपक्रम करे तो वापिस पृथ्वीपर सुरक्षित

लौटनेके लिए यानको ठीक स्थानपर उतारा जा सकेगा या नही ?

२. मनुष्य भार-हीनताकी स्थितिमे जब पहुँचेगा तब उसके हृदयकी गति, अवयवोंका सचालन, मास-पेशियोकी क्रिया, रक्तचाप, श्वासोच्छ्वास आदिकी अवस्थाएँ इतनी अस्त-व्यस्त तो न हो जायेंगी कि वह अपनी बुद्धिसे काम ही न ले सके और अचेतन अवस्थामे ही पृथ्वीकी परिक्रमा करता रहे ? ऐसी स्थितिमे मृत्युकी सम्भावना स्पष्ट थी ।

* * *

आज १२ अप्रैल १९६१ है । २७ वर्षीय रूसी युवक यूरी गागारिन अपने 'वोस्तोक' नामक अन्तरिक्ष-यानमे बैठकर १७,४०० मील प्रति घण्टा की अधिकतम गतिसे १८,७७५ मील तककी यात्रा करके, और पृथ्वीकी परिक्रमा देकर, १०८ मिनिट बाद वापिस जीवित और स्वस्थ लौट आया है । मनुष्यकी अबतककी वैज्ञानिक उपलब्धियोकी यह चरम सीमा है ।

* * *

५ मई, १९६१

गागारिनकी उडानके प्रति शंकालु अनेक अमरीकन आज स्वयं चकित है । उनके देशवासी शेपर्डने आज अपना 'फ्रीडम' यान ४,५०० मील प्रति घण्टाकी अधिकतम गतिसे ११,६०५ मीलकी ऊँचाईपर ले जाकर १५ मिनिट बाद वापिस पृथ्वीपर उतार लिया है ।

* * *

और आज...

६ अगस्तको रूसने यह निश्चित रूपसे प्रमाणित कर दिया है कि अन्तरिक्ष-यात्राका युग प्रयोगकी प्रारम्भिक मंजिले पार करके यथार्थताके व्यावहारिक क्षेत्रमे आ गया है । आज २६ वर्षीय गेरमन स्तेपनोविच तितोवने अपने विमान, वोस्तोक–२ की उडानको अन्तरिक्षमे १७,७५० मील प्रति घण्टाकी गतिसे २५ घण्टो तक जारी रखा और पृथ्वीके एक-दो या पाँच-सात नही, बल्कि १७ से कुछ अधिक चक्कर लगाये है ।

विज्ञानने अन्तरिक्ष-यात्राके कठिन प्रतिरोधोंपर विजय पा ली है, क्योकि तितोवकी मानव-काया २५ घण्टो तक भार-हीनताकी स्थितिमे रही और इतनी लम्बी उडानके बाद जब फिर गुरुत्वाकर्षणके क्षेत्रमे लौटी तो इतनी सहजतासे कि स्वयं तितोव आश्चर्य-चकित हो गया : "मुश्किल तो यह है कि यह सब इतना सहज-स्वाभाविक था ! जब कि आशा यह लगायी हुई थी कि बहुत ही असामान्य स्थितिका सामना करना पडेगा।"

*   *   *

क्या कोई भी साधारण मनुष्य जिसने अन्तरिक्षमे भार-हीनताकी स्थितिको झेलनेकी ट्रेनिग नही ली है, ५ मिनिट भी वहाँ होश-हवास कायम रख सकेगा ? किन्तु निश्चय ही, यदि गागारिन, शेपर्ड, ग्रिसम और तितोव ट्रेनिग लेकर अन्तरिक्ष-यात्राको सहज-स्वाभाविक बना सकते है तो हम-आप-सबके लिए चाँद-सितारोके लोककी उन्मुक्त यात्रा सुलभ हो गयी !

सुलभ इस सीमा तक कि,

तितोवने पूर्व-निश्चित कार्य-क्रमके अनुसार लञ्च लिया;

कागज-पेन्सिल लेकर रिपोर्ट लिखी;

ऑटोग्राफ अंकित किये,

झपकियाँ ली;

विभिन्न देशोके सदेश ब्रॉडकास्ट किये,

अपने देश, अपनी पार्टी, और अपने 'पितातुल्य नेता ख्रुशोव' द्वारा दिये गये उत्तरदायित्वकी गम्भीरतापर पुलकित होकर चिन्तन किया,

गागारिनसे रेडियोपर सन्देश-विनिमय किया;

अपनी प्यारी पत्नी तमाराके बारेमे—उसके मैडिकल कॉलेजमे भर्ती होनेके बारेमे—सोचा;

पृथ्वीके बहुत सारे फोटो लिये····।

"कैबिनमे हवाका दबाव समान रहा। टेम्प्रेचर २० डिग्री, ह्यमिडिटी (उमस) ७० प्रतिशत। नाड़ीकी गति ८० से १०० प्रति मिनिट,

श्वासोच्छ्वास २० से २८ प्रति मिनिट ।"

"भार-हीनताकी स्थितिमे मै उड़ रहा था, टाँगें ऊपर किये हुए····यह बताना मुश्किल है कि मै किस अवस्थामे सोया—बैठे हुए या लेटे हुए—क्योकि इस बातका निश्चय करना कठिन है कि ऊपरी भाग, निचला भाग या कौन छोर कहाँ है ।"

"आदमी परदेशमे होता है तो उसे 'घरकी याद' आती है, मुझे नया अनुभव हुआ—'अपनी पृथ्वीकी याद' का ।"

"संसारमे अपनी मातृभूमिसे अधिक प्यारी भला और कौन-सी धरा होगी—जिसपर आदमी खड़ा हो सकता है, जहाँ काम कर सकता है, और खेतोकी हवाकी गन्ध ले सकता है ।"

और आकाश ?

"अन्तरिक्ष बहुत ही विस्मयकारी है । इससे बढ़िया दृश्य और सोचा ही नही जा सकता । अन्तरिक्ष अपने कवि और चित्रकारकी प्रतीक्षामे है ।"

* * *

तितोवने पृथ्वीकी परिक्रमा १७ बारसे कुछ अधिक क्यो की ? इसलिए कि १७,७५० मील प्रति घण्टाकी गतिसे उड़नेवाले यानमे उसे लगभग २५ घण्टे उडकर ४ लाख मीलसे अधिककी यात्रा कर लेनी थी । क्यों ? क्योकि चन्द्रमा पृथ्वीसे लगभग दो लाख चालीस हजार मील है और वहाँ तक जाने-आनेमे ४ लाख मीलसे अधिककी यात्रा करनी पडेगी । उतनी लम्बी यात्राका अनुभव तितोवने प्राप्त कर लिया !

इसका अर्थ यह है कि रूस चन्द्रमा तक पहुँचनेके कार्यक्रममे इस सीमा तक आगे बढ गया है । रूसका अन्तरिक्ष-अभियान विज्ञानका अभियान है । विज्ञानकी प्रगति मानव-ज्ञान और मानवीय क्षमताओंकी प्रगति है । किन्तु मानवका अन्धा भाग्य पातालकी गहराइयोमे उतना ही नीचे उतरता जा रहा है, जितनी ऊँचाइयोपर अन्तरिक्ष-यान राजनीतिके रॉकेटोके बलपर आकाशमे ऊँचा उठ रहा है ।

रूसके लिए अभिमान स्वाभाविक है। उसके गर्वोन्नत मस्तकको देखकर वसुधाको प्रसन्न होना चाहिए। किन्तु जब स्वदेशकी उपलब्धिका 'स्वाभिमान' राजनीतिके क्षेत्रका 'दर्प' बन जाता है तो वह स्वयं भी डूबता है और दूसरोंको भी डुबाता है। स्वाभिमान हो तो तितोव और ग्रिसम अपनी उपलब्धिको मानव-मात्रमे बाँटकर इस तरह प्रसन्न होगे जैसे विवाह-के अवसरपर कोई सहभोज के लिए निमन्त्रण बाँटे। वही उपलब्धि यदि दर्प बन जाये तो फिर आश्चर्य क्या यदि फन उठाकर स्वयं दर्पीको ही डस ले!

तितोव और ग्रिसम दोनों बेचारे दो सत्ताओकी शतरंजी बाजीकी प्रतिपक्षी गोट है। खेलनेवाले कोई दूसरे है। और, खेलनेवाले विज्ञानकी उपलब्धिमे तथा मानवकी विकासशील क्षमताओमे आज इसलिए अधिक रुचि ले रहे है कि ये उनके दर्पकी, अहकारकी, सत्ता और मदकी ज्वालाके लिए मज्जामय आहुतियाँ है।

और, बर्लिनकी सीमाओपर मोर्चाबन्दी हो रही है!

और, बमबाजीके नये-नये प्रयोग ज़ोर-शोरसे शुरू हो गये है!

और, विश्वमे रेडियो-सक्रिय धूल फैल-फैलकर घनी होती जा रही है!

और, तितोवने कहा है, "आक्रमणकारी होशियार रहे, हमारा अन्तरिक्ष-यान पृथ्वीके किसी भी भागमे पलक झपकते पहुँच जायेगा और बम बरसा देगा।"

और, बमकी किस्मे हमे पता है क्योकि हिरोशिमाके बाद अणुविज्ञान बहुत आगे बढ गया है।



लेखक

जन्म—सन् १९०९; मध्यप्रदेश ।

शिक्षा—एम. ए. [संस्कृत साहित्य],
एम ए [अंग्रेजी साहित्य],
दिल्ली विश्वविद्यालय ।

कार्य—प्रोग्राम-नियोजक, आकाशवाणी, दिल्ली [१९३७] पब्लिसिटी ऑफिसर, भारत इन्श्योरेन्स कम्पनी, लाहौर [१९३८-१९४१] सन् १९४२ से साहू जैन उद्योग प्रतिष्ठानसे सम्बन्धित—साहू शान्तिप्रसाद जैनके सचिव तथा साहू जैन संस्थानके डायरेक्टर ऑव पब्लिकेशन्स ।

साहित्यिक—भारतीय ज्ञानपीठकी लोकोदय ग्रन्थमालाके सम्पादक और नियामक । [अबतक लगभग १५० ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं ।]

सम्पादक—'ज्ञानोदय' [मासिक] ।

मन्त्री—भारतीय ज्ञानपीठ ।

प्रकाशन—कागजकी किश्तियाँ ।